Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

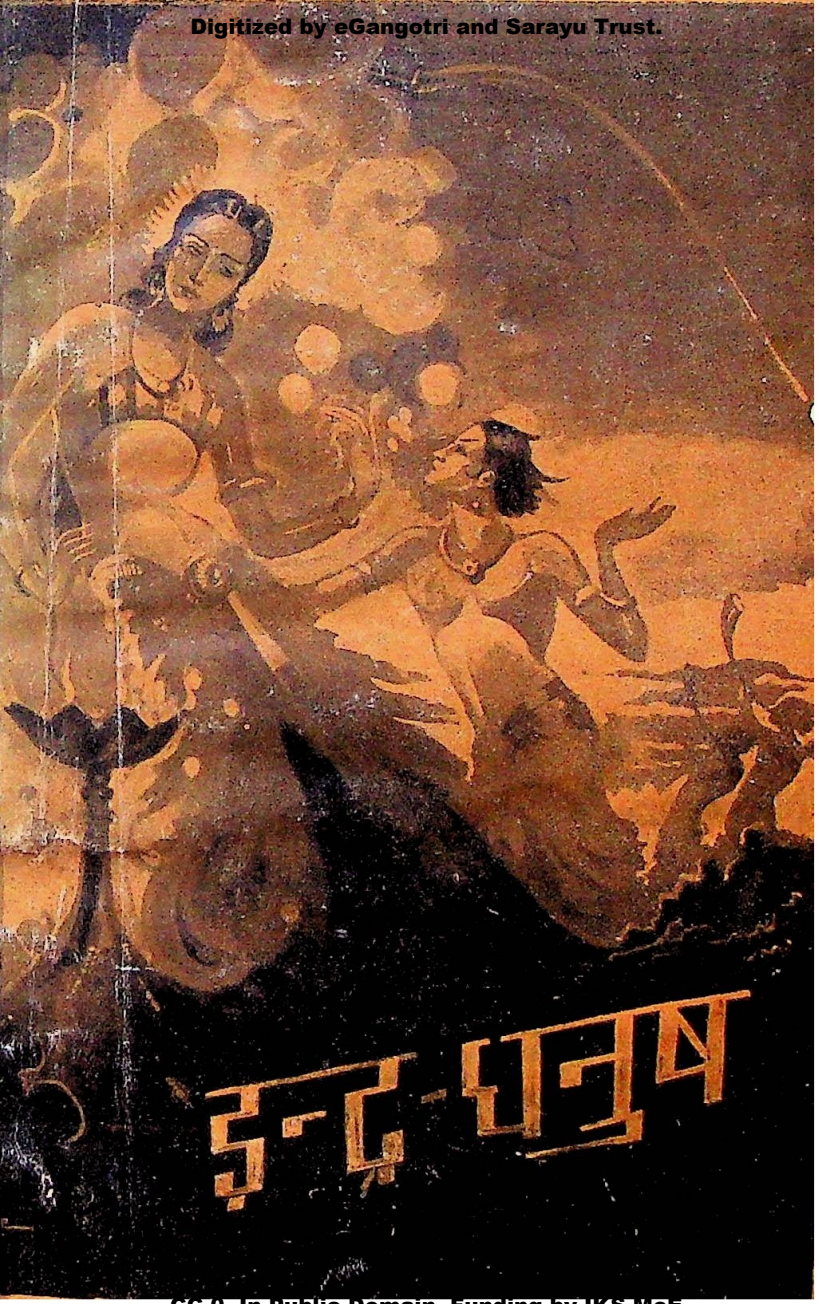

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रा० व० डा० सरजूप्रसाद ग्रन्थमाला पुष्प ४

Indra dhanush

इन्द्र-धनुष

(काव्य-ग्रन्थ)

Sri Pratap Singh
Library
Srinagar.

Nilkanth Tiwaree.

रचयिता:—

श्री. नीलकण्ठ तिवारी, एम्० [illegible] साहित्यरत्न

SPS
891.431 N 61 I
15745

Rajeev

प्रकाशक:—

श्री मध्यभारत हिन्दी-साहित्य-समिति, इन्दौर

Madya Bharati Hindi Sahitya Samiti Indaur

प्रथमावृत्ति } सन् १९३९ 1939 { मूल्य ।।)

मिलने का पता:—

[illegible]

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

acc. no: 15745

Rs 0-12-0

103

Sri Pratap Singh
Library
Srinagar.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

635
A157

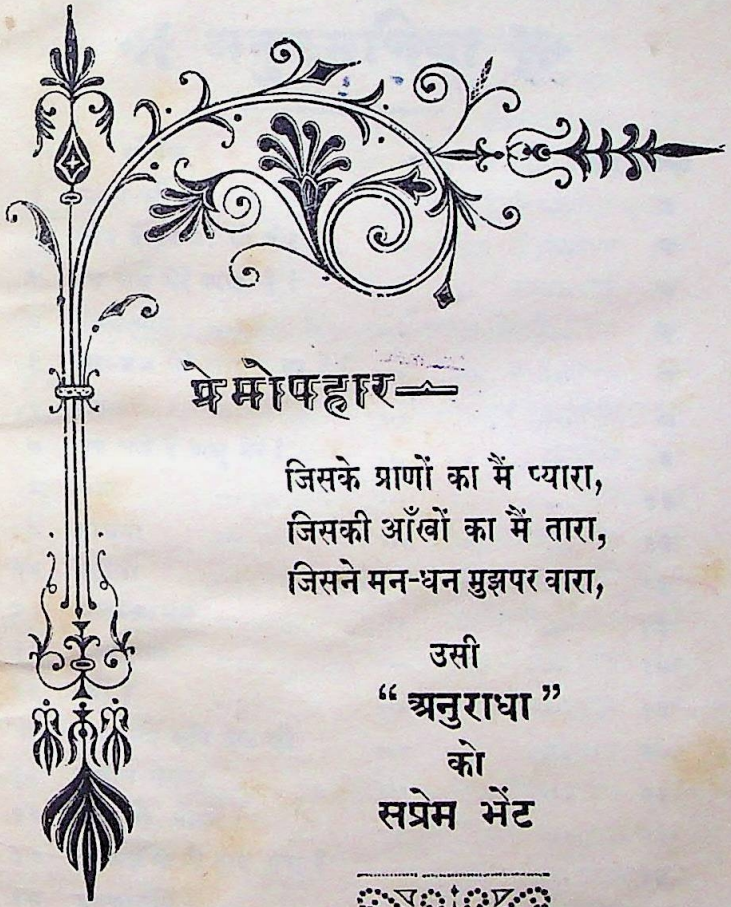

प्रेमोपहार—

जिसके प्राणों का मैं प्यारा,
जिसकी आँखों का मैं तारा,
जिसने मन-धन मुझपर वारा,

उसी
"अनुराधा"
को
सप्रेम भेंट

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

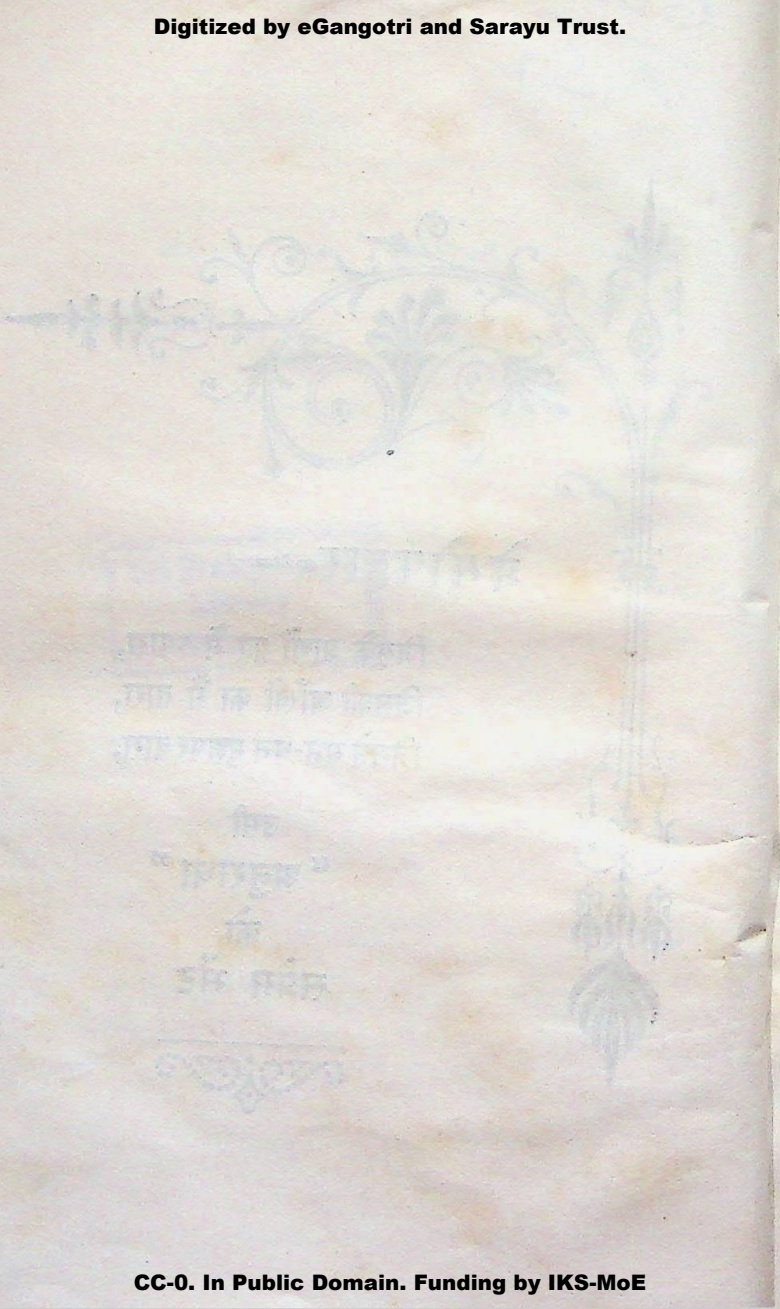

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अनुक्रमणिका

नं०	शीर्षक	पृष्ठ संख्या
१	आत्म-परिचय	१
२	कौन बँटाये उर की पीर !	२
३	उड़ चल मेरे प्राण रे !	४
४	प्रलय-गान	६
५	जल-जल मेरे आकुल उर रे !	७
६	करुणे !	८
७	उड़ चले हैं अश्रु मेरे !	९
८	गीत	११
९	साधना	१३
१०	प्रतीक्षा	१५
११	अलबेला जग	१६
१२	प्रेमानुभव	१७
१३	क्यों ?	१९
१४	आज वह छवि देख ली	२०
१५	अज्ञात वेदना	२१
१६	कुछ तो बोलो !	२२
१७	पा सकूँगा मैं तुम्हें क्या ?	२४
१८	करुणामयि !	२७
१९	सौंदर्य्य-महाज्वाला	२९
२०	है अनोखा प्रेम का संसार री सखि ! ...	३१
२१	क्या न गाँठ तुम खोलोगी ?	३४

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

२२	मेरी अनुराधा !	३७
२३	कब मिल पाये मन के मीत !	४०
२४	भर-भर आते मेरे लोचन !	४२
२५	महानाश की ओर...	४४
२६	सौंदर्य्यान्वेषण	४८
२७	हुआ क्रांति का भीषण गर्जन	४९
२८	चले पुजारी दीवाने	५१
२९	आज़ादी के पथ पर	५३
३०	मेरा संसार	५५
३१	अरे ! सैकड़ों भगवानों का, तू ही तो भगवान सखे !	५७
३२	वसन्त-गान	५९
३३	जीवन का मधुमास	६१
३४	चन्द्रिका	६२
३५	गीत	६४
३६	वह भिखारी	६५
३७	किसान की आहें	६९
३८	ग़रीबों की दुनिया	७१
३९	कवि और वेश्या	७३
४०	भारत का भग्न भवन	७७
४१	ताजमहल	८१
४२	रक्त-पथ-पंथी जगत का, शान्ति हो गलहार कैसे ?...	८३
४३	हास्य या रुदन !	८७
४४	जाग करुणे ! जागरी !	८९
४५	मेरी महा प्यास	९२–१००

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

—: शुद्धि-पत्र :—

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
बन	बनकर	८	२२
हांस	हास	६	१४
वेदना-वल्ली वढ़ी	वेदना-वल्ली बढ़ी	११	१६
विरस !	विरस	१५	४
तूफ़नी	तूफ़ानी	५७	५
आँसू तेरे	तेरे आँसू	५७	१६
ढ़ा जर्जर वृढ़ !	वृढ़ा जर्जर	६७	२६
निधन	निर्धन	७२	४
माखन-मृदुल	माखन-सी मृदुल	६६	६
लिखे ज	लिखे जा	१००	११
पूर्णमासी	पूर्णिमा-सी	४८	२०

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

श्री. नीलकण्ठ तिवारी, एम्. ए., साहित्यरत्न

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कुछ अपनी बात

मा सरस्वती के चरणों में आज यह अकिञ्चन् कवि अपना यह प्रथम काव्य-ग्रंथ " इन्द्र-धनुष " अर्पित कर रहा है पूर्ण आत्म-विश्वास के साथ ! यदि सरस्वती-मन्दिर के पुजारी इसे तुच्छ समझकर ठुकरादें तो उसे परवा नहीं-चिन्ता नहीं ! किन्तु उसे विश्वास है और पूर्ण विश्वास है कि मा सरस्वती अपने इस रोते हुए बालक के आँसुओं को अपने करुणा-अञ्चल में अवश्य स्थान देगी ! मैं—हिन्दी-संसार की प्रोपेगैण्डिस्ट धाँधली से बिल्कुल दूर-महत्वाकांक्षी, किन्तु आत्म-सम्मान की भावना से युक्त (और यही सच्चे साहित्यिक का लक्षण है) मध्य-भारत की इन्दौर नगरी के एकान्त कोने में रोने-गानेवाला—शायद हिंदी के सहृदय संसार से परिचित या अपरिचित साहित्य-सेवी, आज निर्भयतापूर्वक अपने धुँधले " इन्द्र-धनुष " को काव्य-प्रेमियों के सम्मुख प्रस्तुत कर रहा हूँ ! " निर्भयतापूर्वक " इसलिये कह रहा हूँ कि जो कुछ अच्छा या बुरा मैंने लिखा—अपनी अनुभूति की प्रेरणा से लिखा—कोरी भाव-शून्य कल्पना से प्रेरित होकर नहीं ! मैं अपनी अधिकांश कविताओं में रोया क्यों ? इस प्रश्न का जवाब नहीं ! महाकवि शेली ने तो कहा है, " Sweetest Songs are those that tell of saddest thoughts" और यही मुझे पसन्द है—हाँ यह ठीक है कि मेरे गीत Sweetest (मधुरतम) नहीं।-कहते हैं कि आँसू International अंतरराष्ट्रीय होते हैं और हास्य Provincial प्रान्तीय ! जो कुछ मुझे अनुभव हुआ उसे मैंने छन्द-बद्ध करने का प्रयत्न किया—पर कहाँ कर पाया ? अपने गहरे आँसुओं का दर्द मैं क़लम की नोक से कहाँ उतार पाया ? मानता हूँ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कि अभी मेरी प्रतिभा उतनी विकसित नहीं हो पाई—केवल गुण-ग्राहकों का यही शुभाशीर्वाद चाहता हूँ मैं एक दिन अपनी लेखनी से अपना "अग्नि-जल-युक्त" हृदय काग़ज़ पर उतार सकूँ ? मैं न तो रहस्यवाद होने का दावा करता हूँ और न अस्पष्टताकी आड़ में छायावादी ही ! जहाँ तक बन पड़ा अपने भावों और विचारों को स्पष्टता से चित्रित करने का प्रयत्न मैंने किया ! इसीलिये मैंने ब्रज और उर्दू के चलते हुये कतिपय मीठे शब्दों को भी अपना लिया !

आज-कल का ज़माना बड़ा Prosaic शुष्क हो गया है। विज्ञान और राजनीति का युग है ! साहित्य जीवन से दूर हो रहा है—हालाँ कि साहित्य मानव-हृदय की शाश्वत सम्पत्ति है—तो भी आज-कल के भीषण संघर्षण के ज़माने में जब कि पेट आत्मा को भी निगल रहा है और जब कि शुष्क विज्ञान और राजनीति ने सरस जीवन को कई शुष्क यन्त्रवत् Departments भागों में विभक्त कर दिया है—जब कि मानव-हृदय की कोमल रागात्मिका वृत्तियाँ भी मशीन के पुर्ज़ों की तरह Fit फिट हो गई हैं, तब भला काव्य-कोकिल की कल कूकों को कौन सुने ? जीवन मशीन बन गया है—जड़-सा हो गया है और इस जीवन-मशीन की "घरर-घरर" में काव्य-कन्हैया की बन्सी के मोहक स्वर प्राणों के चेतन कर्ण-रन्ध्रों तक कहाँ पहुँच पाते हैं ! जहाँ साहित्य, जीवन से हटता-सा मालूम होता है—उस देश के जीवन का भयङ्कर मानसिक और आत्मिक पतन ही समझिये। साहित्य ही मानव जाति के अनुभूत कार्यों तथा उसकी अंतर्वृत्तियों की समष्टि है। क़लम की ताक़त दुनिया की सब ताक़तों से अधिक शक्ति-शालिनी है। जिस मनुष्य में साहित्य और कला के प्रति प्रेम नहीं वह "पुच्छ-विषाण-हीन" साक्षात् पशु है—जिस देश को अपने साहित्य और साहित्यिकों पर नाज़ नहीं—उसे पतन के भीषण कगारे पर खड़ा समझिये ! साहित्य की महत्ता किसी से छिपी नहीं ! साहित्य ही देश की, संसार की, मानवता की, विश्वात्मा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

की सर्वश्रेष्ठ "सत्यं, शिवं, सुंदरं" युक्त महाशक्ति है !

साथ ही कवि का महान् उत्तरदायित्व भी कम नहीं—कवि का स्थान संसार में बहुत ऊँचा होता है, चाहे भौतिकता की दृष्टि में वह ग़रीब हो—छोटा हो—पर सत्कवि अमर-पुरी का निवासी होता है—वह फ़क़ीर-बादशाहों का बादशाह—ब्रह्माओं का ब्रह्मा होता है। लँगोटी लगाने-वाले तुलसी, सूर, कबीर आदि ज़िन्दा हैं, अमर हैं और युग-युग तक रहेंगे, पर लाखों की संख्या में राज्याधीश, धन-कुबेर आदि मर गये और हमेशा के लिये मर गये ! जो समाज कवियों का—सर्व श्रेष्ठ कला के इन निःस्वार्थ पुजारियों का आदर नहीं करता वह मूर्ख है, दयनीय है ! पर कवि कहलाना और कहने का दावा करना सरल नहीं। चाहे बादशाह अपने को बादशाह कह दे परन्तु महाकवि भी अपने को कवि कहने का दावा नहीं करता—इस कला की साधना कठोर है—अत्यन्त कठोर है और हज़ारों वर्षों की तपस्या के बाद ही एक दो महाकवि उत्पन्न होते हैं जोकि राम-सीता को राम-सीता, राधा-कृष्ण को राधा-कृष्ण बना जाते हैं ! क्या यह कहने की बात है कि राम कृष्ण और शकुन्तला के अमर निर्माण में महाकवियों ने अपने कण-कण को जला जला कर मरण त्योहार मनाया ! अस्तु, फिर कैसे कहूँ कि मैं कवि हूँ ! नहीं ! नहीं ! बिल्कुल नहीं ! किन्तु हूँ ललित कलाओं की रानी इस कविता-सुन्दरी का एक क्षुद्र उपासक ! हाँ एक बात और—हिन्दी का आधुनिक काव्य-साहित्य काफी समृद्ध है—हमेशा की तरह। हिन्दी का काव्य-साहित्य, हमारे लिये अभिमान करने की वस्तु है ! परन्तु दुर्भाग्य तो इस बात का है कि हिन्दी-समाज में सरसता की कमी है ! जो कि हिन्दी लेकर बी० ए० और एम० ए० भी हो जाते हैं वे भी कविता के विषय में कोरे ही रहते हैं—मानों काव्य का मधुर संगीत उनको अच्छा ही नहीं लगता और ख़ास कर जब ऐसे ब्लैंक-पेपर-दिमाग़वाले कविता पर अपना गम्भीर निर्णय देते हैं तब सिवा हँसी के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

और कुछ नहीं आती ! ज़माना लद गया, तो भी कई " पढ़े-लिखे " कहलानेवाले भी " छायावाद " का मखौल उड़ाते हैं चाहे वे अंग्रेज़ी के कवियों की कविताओं की हवाई तारीफ़ करें, बिना समझे-बूझे ही ! काव्य-कला, संगीत-कला या चित्र कला आदि पर, बिना कुछ समझे-बूझे, निर्णय देना मूर्खता ही है ! हिन्दी का आधुनिक "छायावादी युग" अंग्रेज़ी साहित्य के गत Romantic age रोमेन्टिक युग-सा ही है ! स्थानाभाव से " छायावाद " की विशेषताओं पर, जोकि बहुमुखी और श्लाघ्य हैं—मैं कुछ नहीं लिखना चाहता ! इतना कहना पर्याप्त है कि हमारे आधुनिक हिन्दी-साहित्य ने स्व० प्रसाद, गुप्त, पंत, महादेवी, निराला, नवीन, हरिऔध, भगवतीचरण, रामकुमार, बच्चन, अनूप आदि-आदि अनेक सत्कवि पैदा किये, जिन्हें पढ़ने से ही आधुनिक काव्य-साहित्य की आश्चर्यजनक प्रगति का पता लग सकता है ! हमारा आधुनिक हिंदी काव्य-साहित्य निस्सन्देह गुजराती, मराठी आदि से बढ़ा-चढ़ा है तथा रवि बाबू को छोड़कर बँगला से भी बढ़ कर है।

सहृदय पाठक पहले शुद्धि-पत्र पढ़ कर पुस्तक कीग़लतियाँ सुधार लें और बेचारे ग़रीब कवि को अशुद्धियों के लिये ज़िम्मेवार न बनाएँ।

इसके बाद मैं हिन्दी की महाकवयित्री सुश्री० महादेवीजी वर्मा एम्० ए० का आभारी हूँ जिन्होंने कि मेरी अधिकांश कविताएं पसन्द कर उनमें उचित संशोधन और परिवर्तन कर दिया ! साथ ही हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि बन्धुवर " अञ्चलजी " का भी आभारी हूँ जिन्होंने कि बीमारी की हालत में भी चट-पट इस पुस्तक की 'भूमिका' लिख कर भेज दी।

मेरे स्नेही मित्र इन्दौर के प्रसिद्ध चित्रकार तथा नर्तक श्री. पी. ए. गावड़े जी० डी० आर्ट (बॉम्बे) ने जो "इन्द्र-धनुष" का भावपूर्ण और कलात्मक चित्र बनाया उसके लिये वे मेरे धन्यवाद के पात्र हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

" इन्द्र-धनुष " की अधिकांश कविताएँ ' वीणा ' ' माधुरी ' ' चाँद ' ' सुधा ' ' विशाल-भारत ' ' स्वराज्य ' आदि में प्रकाशित हो चुकी हैं—तो भी चूँकि " इन्द्र-धनुष " मेरी प्रथम कृति है अतएव उसमें त्रुटियाँ होना अनिवार्य्य हैं—क्योंकि काव्य-कला में सिद्धि प्राप्त करना एक दिन का काम नहीं। महाकवि शेली के शब्दों में काव्य-कला की साधना 'Thorny road' कँटीला रास्ता है—Which leads, through toil and hate, to Fame's serene abode—जो कि महत् साधना और अवहेलना के तूफ़ानों में से गुज़रकर ख्याति के शांति-सदन की ओर ले जाता है! एतदर्थ आशा है कि सहृदय बुद्धिमान् पाठक इन इन्द्रधनुषी चम्य त्रुटियों को क्षमा करेंगे।

नीलकण्ठ तिवारी
नवरतनबाग़,
इन्दौर.

आषाढ़स्य प्रथम दिवसे
संवत् १९९६

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दो शब्द

किसी प्रतिभाशाली कवि की कविता पढ़ने के बाद पहला प्रश्न जो मन में उठा करता है वह है, कवि की इस स्वतः स्फूर्ति का प्रवाह कहाँ से आया ? इन्दौर नगर-निवासी, मध्यभारत के इस भावुक, प्रतिभाशाली तरुण कवि की; जिसको कि शायद उक्त प्रान्त ने और देर से आँख खोलनेवाले तथा विकार-ग्रस्त और प्रोपेगैण्डा-ग्रस्त अंध-कचरे आलोचकों की पथ-भ्रष्ट लेखनी के इशारे पर चलनेवाले हिन्दी-संसार ने अभी परख नहीं पाया—कविताएँ पढ़ने के बाद यह प्रश्न उठा कि इस कवि के हृदय की भूख को अतृप्त रखनेवाले संघर्ष का स्त्रोत कहाँ है ? प्रेम और करुणा की मर्मस्पर्शी, मधुर और पुरदर्द कविताओं के गायक इस भावुक कवि की कविताएँ पढ़ते-पढ़ते जब मेरे नेत्र और हृदय सजल हो गये तब सबसे पहले मेरे सामने यही प्रश्न आया कि कवि की अनुभूति में जो संगीत है—उसकी द्रोह-शिखा में जो इतना असंतोष है—उसकी आग, उसकी प्रेरणा कहाँ है ? मालवा के " उजड़े दयार " के इस कवि-कोकिल की हूक-भरी कूक—इस कवि के व्यक्तित्व को फोड़कर तरंगित होने वाली दुःख-दर्द की लहरें-उसके प्राणों की अन्तस्तली को चीरकर आनेवाली आवाज़—ये सब, क्या कारण है कि इतनी जल्दी मर्म-स्पर्शी और मधुर हो गईं ?

तिवारीजी का हिंदी-संसार के तरुण कवियों में ऊँचा स्थान है—उनकी भावनाएँ अनुभव की आग में तप-तपकर निखर पड़ी हैं, उनकी कल्पनाएँ नवीन और हृदय-स्पर्शी हैं, उनमें प्रतिभा की ज्वलन्त चिनगारियाँ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हैं। जिस गति से वे विकाश-शील हैं उसे देखकर उनका भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल दिखाई पड़ता है। इनकी कविताएँ जिस तीव्रता से दिल पर चोट करती हैं वह कहने की बात नहीं! किन्तु—" भाखे बने न बने बिनु भाखे "। अस्तु, कवि, आत्म-परिचय देता हुआ कहता है:—

" दुख की नैया खेता हूँ मैं, आहों की पतवार लिये
तामस-पथ में भटक रहा हूँ, प्राणों का अङ्गार लिये
पलकों-सा मैं झूम रहा हूँ, सपनों का दुख-भार लिये
आँखें मेरी उमड़ी पड़तीं, सावन के उद्गार लिये
गिरा शिथिल अधरों पर सोई, जीवन–उपसंहार लिये "

कितनी मर्मस्पर्शिता है इन पंक्तियों में! कवि का प्रवाह और प्रसाद देखिये:—

कौन बँटाये उर की पीर!

किस वीणा के मधु-तारों में, अपनी सिसकी के स्वर भर दूँ!
किस कोकिल की कल कूकों में, अपनी हूकों को भर-भर दूँ!
किस चकई को मुग्ध करेगी, मेरे शोलों की तासीर!
किस खँडहर की "साँय-साँय", को, मूक शून्यता सौंप चलूँ मैं!
किस मरु-तप्त बवण्डर को निज, उर की धड़कन सौंप टलूँ मैं!
किस काँटे को मैं दे डालूँ, अपनी कसकन की जागीर?

कवि विक्षिप्त है– व्याकुल है। अपने हृदय का यह निदारुण भार, यह तूफ़ानी दावानल, वह कैसे अपने से दूर करे?

आगे कवि कहता है:—

भार स्वयं का हाय! स्वयं ही, नहीं उठाने हूँ मैं पाता
कहो कौन मानवता मेरे, दुख से जोड़ेगी फिर नाता?
नीलकण्ठ तू विष पी अपना, अब तो समझ-समझकर चीर
कितनी कारुणिक जड़ता है? बड़ी पुरदर्द कहानी यह है!
" चन्द्र-किरण अम्बर से उतरी, अम्बर दीन्हा रोय
इस बागी संसार में, कौन किसी का होय? "

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सचमुच नीलकण्ठ तुम अपने शब्दों में अपना विष, क्षीर समझ कर पान करो ! तुम्हें तो गरल-पान ही करना है ! जग के क्रूर बन्धनों से ऊबकर कवि चीख़ उठता है, स्वतन्त्र होने के लिये, इन मधुर पंक्तियों में–

मेघ-मराल-माल तू बनकर, क्षितिज-पार अज्ञात तटी पर—
जहाँ मुक्ति का मान सरोवर, वहीं लगाकर अम्बर के पर—
उड़ चल मेरे प्राण रे !

तिवारीजी मुख्यतः प्रेम के कवि हैं ! यौवन उनकी एक सतत् जाग रूक ज्वाला है—उन्माद उनका सहचर है और विवशता उनकी आधी रातों की सङ्गिनी ! प्रेम में जो-जो होता है वह सब इनकी कविताओं में है— इस ढाई अक्षर के शब्द की विचित्रताएँ और साकार प्रतिमाएँ, इसकी युग-युग से विश्व के पिपासित प्राणों में धू-धू करनेवाली रक्तिम ज्वालाएँ तिवारीजी की कविताओं में क़दम-क़दम पर हैं। आँखोंका आँखों से जो अपनत्व होता है, आत्मा को आत्मा की जो कशिश होती है— वह सब और उसके बाद का क्रन्दन, मूक और मुखर निवेदन, वहशत और विक्षिप्तता इनकी कविताओं में है। इन कविताओं की एक ध्वनि है, एक रागिनी है, एक तरंग है। वह ध्वनि है अन्तर्जगत् की, रागिनी है शरीरी और अशरीरी प्रेम की, और तरंग है मस्ती की, बेख़ुदी की आत्म–विस्मरण की, आत्म-त्याग की। प्रेम की अनुभूतियाँ सच्ची हैं– सपने साकार हैं। इनके शरीरी प्रेम में अश्लीलता नहीं प्रत्युत् ज्वलन्त सात्विकता है–अश्रु-नयना गंभीरता है, निराशा और विरह की चिता में जलता हुआ भी कवि भस्म नहीं होता, लेकिन सच्चे कलाकार की तरह सोने-सा निखर उठता है !

सच है महाकवि अकबर ने कहा है,

" इश्क़ को दिल में दे जगह " अकबर "
इल्म से शायरी नहीं आती "

आलोचकों को यह मर्ज़ है कि वे प्रेम में स्थूलता देख कर नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं ! प्रेम हृदय की वस्तु है, मस्तिष्क की नहीं। ज़बरदस्ती

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शुष्क आध्यात्मिक सिद्धान्त घुसेड़ने से तो कविताएँ, कविताएँ नहीं होतीं ! प्रेम अनुभव की वस्तु है—और जिस कवि की प्रेम की जितनी ही गहरी अनुभूति होगी उतनी ही विदग्धता उसकी कविताओं में होगी। कवि ने मानव-हृदय की जिन प्रेम-अग्नि-दग्ध वृत्तियों और मनोवेगों का जैसा मादक वर्णन किया है वह भूलने की वस्तु नहीं ! प्रेम की जो मूल मौलिक सत्ता है, जो अग्नि-भरी तीखी-तीखी बिजली है वह क्या मांस-मज्जा और आत्मा में कोई अंतर देखती है ?

मीरा के गीतों में जो टीसें हैं, जो असर है, जो जुनून है, उसे देख कर कौन कह सकता है कि मीरा के परम-पुरुष वे पुरुष-पुरातन कोई हाड़-माँस के विकारों से युक्त प्राणी न रहे होंगे ! प्रेम की इसी भौतिकता के भीतर से चण्डीदास और विद्यापति ने जो चिनगारियाँ फूँकीं, सूरदास ने जो सपनों का संसार गाया और रसखान ने जो मिठास की मन्दाकिनी बहाई वह कितने प्राणों का धन न हो चुकी होगी ? इन पंक्तियों के क्षुद्र लेखक की कृतियों के प्रति भी कुछ ऐसे ही आक्षेप किये गये हैं और "मधूलिका" के अधिकांश गीतों पर यही लाञ्छन लगाया गया है। इसका मेरे पास एक ही जवाब है। प्रेम में आध्यात्मिकता नाम की कोई चीज़ नहीं होती। प्रेम के भीतर से उसकी संपूर्णता, उसकी साधना और ज्वलन्त सृजनात्मक प्रेरणा जब अपनी विराट् और व्यापक परिधि लेकर फूटती है तब वह अपावन होते हुए भी पावन होता है, लघु होते हुए भी वह चिरन्तन और सर्वज्ञनीन, सर्वकालीन होता है। जहाँ तक साहित्य और विशेषकर काव्य का संबन्ध है वहाँ तक ऐसा ही होता आया है। प्रेमी की कविता में प्रेम का जो रूप हमें दिखायी देता है वह अस्थिर होते हुए भी स्थिर है, क्षणिक होते हुये भी अनन्त और असीम है।

तिवारीजी की अधिकांश कविताएँ आधुनिक गीति-काव्य-युग की अत्यन्त मधुर रचनाएँ हैं—परन्तु खेद है कि हिंदी-आलोचकों की

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

निगाह ऐसे तरुण कवियों की मधुर कविताओं पर नहीं पड़ती—वे पहले "बड़े" कहलानेवालों का नाम देखते हैं फिर काम। तिवारीजी की विप्रलम्भ-शृङ्गार के अंतर्गत आनेवाली तथा करुणा-सिक्त कविताएँ बड़ी सुन्दर हैं, उनमें अंतर्भूत विवशता, कसक, दर्द-भरी अनुभूति तथा विविध भावनाओं का आरोह-अवरोह हृदय को हिला देता है।

देखिये "कुछ तो बोलो!" शीर्षक कविता में कवि कहता है:—

कलरव करलें इस जग-तरु पर, हम दो पंछी हैं अनजाने
नियति-पंख पर उड़ जाएँगे, कौन देश फिर? हम क्या जाने?
इस के यमुना-तट पर बाले! राधा बन कर तो डोलो!"

ये अमर पंक्तियाँ हैं।

इसी तरह एक दूसरी सुन्दर कविता है:—

है अनोखा प्रेम का संसार री सखि!
मृत्यु में जीवन यहाँ है, और जीवन में मरण, सौ बार री सखि!
प्रेम की जादू भरी इस गैल का "अथ" है अनिश्चित
यह लहर है जो उठी तो वह चली तट से अपरिचित
इस डगर में निशि-दिवा क्या? जब चले तब हो गया भिनसार री सखि!

तथा:—

प्रेम-पूरित प्राण का नभ, कौन मानव नाप पाये?
जब कि यह नभ एक तारा, बन उसी में जा समाये!

❀ ❀ ❀ ❀

देखलो अज्ञात तम में वह झलकती दीप-बाती
अग्नि की वह अंगुली हमको इशारे से बुलाती
है हमारे ही हृदय की आग सखि! वह दीप-बाती
जो झलक कर क्षितिज-दर्पण, में हमें आगे बुलाती
प्रश्न अब उस पार का क्या? प्रेम-सागर तो सतत,
मँझधार री सखि!

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"एक आग का दरिया है और डूब के जाना है"

इन शब्दों में उर्दू के महाकवि जिगर ने प्रेम को पहिचाना है! एक और कविता है—

प्रेम ने ही तो मुझे जग का महादानी बनाया
भिक्षु बनकर ही तुम्हें मैंने महारानी बनाया
मैं पपीहा प्रेम-प्यासा तान पंखों की लगन को—
नापता आया तुम्हारे दीर्घ नयनों के गगन को
तृषित दृग से सब क्षितिज के, छोर मैंने नाप डाले
पर तुम्हारी स्वाति-बदली ने न कुछ भी बूँद डाले

यही विचित्रता प्रेम में है—जो कि सचमुच भिक्षु बन कर महारानी बनाने की ताक़त रखता है, वही प्राणी कितना विवश और कातर होकर कहता है—

आख़िरी यह रात, करुणा-दीप तो अब तुम सँजोलो!
मैं प्रलय-पथ का पथिक बन जा रहा अब प्राण बोलो!

देखिये कुशल चित्रकार के लिये, रुलानेवाली ये चित्रोपम पंक्तियाँ:—

भूमि-नभ के पृष्ठ पर अंकित रहेगी यह निशानी
दो सजल दृग, दो चरण रूठे, भ्रमित, निर्बोध, मानी

फिर कवि कहता है:—

देवदास पारो की गाथा, विद्यापति—पगली अनुराधा
आग भरे सब आते, जाते आँसू भर यह तृष्णा-गाथा
यहाँ कहाँ यमुना का तट है? कहाँ कृष्ण अरु प्यारी राधा?
अरे! प्रवासी के पद-चिह्नों, पर पलकों की लघुतम रजनी—
बिछ-बिछकर बस जाती बीत, कब मिल पाये मन के मीत?

प्रेम की ट्रेजेडी देखिये:—

पलक, प्राण पर है गिर जाती, अंतिम बूँद आँख भर लाती
साँस क्षितिज से जा टकराती, पुतली अंधकार पी जाती

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दो बिछुड़े प्राणों की धड़कन, महामृत्यु-पद-चाप सुनाती
चार दृगों की कितनी प्रातें, प्रलय-निशाएँ बन-बन जातीं !

कवि यौवन की चिर-तृष्णा के विषय में कहता है:—

" इधर चाँदनी ओठों ने पी, उधर नयन बने बरसाती

तथा "कर में प्याला, घूँट अधर में, और गले में चुभती फाँसें"

यह प्रेमी कवि अपनी निराशा इन करुणा-सिक्त पंक्तियों में प्रकट करता है—

तुम फुहारे-सी हँसोगी, फूल के तट से लिपटकर
अश्रु-सा छिटका करूँगा, मैं तटों से सिर पटक कर
मैं निराशा की लहर—तट-तट भटक पूछा करूँगा:—
पा सका हा ! मैं तुम्हें क्या ?

कवि की इस प्रेम-जन्य निराशा में, यौवन-पिपासा की अतृप्ति में तथा विरह-भावना की वेदना में, निराशा-जन्य आशा भी है तथा है प्रेम का उच्चतम त्याग भी:—

कवि " अनुराधा " शीर्षक कविता में कहता है:—

" जग के कलुषित दृग में यौवन, संशय का घर है बन जाता
नैतिकता की वृद्ध दृष्टि में, बनता पाप; पुण्य का नाता
कहीं प्रेम भी बन्दी होता, करें लाख दृग पहरेदारी !
बन्धन के तहख़ानों में क्या, बंदी प्रेम-पवन सञ्चारी?

तत्पश्चात्:—

विद्यापति के कलित काव्य की अयि अनुभूति ललित अनुराधा !

" तन्मय पीड़ा में हम इतने हों कि हटे पीड़ा की बाधा "

कवि पीड़ा में तन्मय होकर ही आशा-भरे तथा त्याग-भरे स्वर में प्रेम-पीड़ा का निराकरण करता है !

इसी तरह कवि " भर-भर आते मेरे लोचन " शीर्षक कविता में अपनी प्रियतमा की दुलार-भरी दुनिया से जब बिछुड़ने लगता है तब

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उसकी प्रेयसी बाला:—

" खड़ी हुई है बाला तट पर, मुझ को देने प्रेम-बिदाई
आँखों में तो अश्रु भरे हैं, अधरों पर है मुसकी छाई "

आँखों में अश्रु भर कर तथा अधरों पर मुसकी लाकर बिदाई देती है ! इसमें सात्विक प्रेम की कितनी गूढ़ व्यजना है !

" मेरी महाप्यास " शीर्षक कविता में कवि ने यौवन की अनन्त-पिपासा का, सौंदर्य्य-तृष्णा का उग्र चित्र प्रस्तुत किया है । इस मार्मिक कविता में कवि कहता है:—

जब कि माखन-सी मृदुल नव, छातियों को उर लगाया
आत्मा की ज्योति में प्रलयंकरी अवसान छाया
जो कली चूमी उसी में, वासना का ख़ून पाया
ख़ून का पी घूँट, भभकी और भी यह मांस-काया

अन्त में यह प्रेम-पुजारी और सौंदर्य्योपासक कवि चीत्कार-भरी निराशा में मग्न होकर—क्रियात्मक निराशा में डूब कर गा उठता है:—

लो डगर पकड़ी लपट-सी वह बढ़ी बन भ्रांत माया
इस पथिक को ना मिली खग-पंख की भी रंक छाया
दृष्टि मेरी-डगर मेरी, हो गई तम में विलीना
छाँह में भी हा ! स्वयं की सूख ना पाया पसीना !
कब बुझी शाश्वत तृषा मम ? ख़त्म कब होगी जवानी ?
सुन ! सुकवि ! सुन ! मिल कहाँ पाई तुझे वह रूप-रानी !
घूँट-भर की चिर-तृषा वह, एक जलती वह निशानी !
अश्रुओं की साध-प्रतिमा ! लेखनी की वह रवानी !
आग दिल में तू जलाये, आँख में भर क्षार पानी !
बस लिखेजा ! बस लिखेजा !! कवि ! यही तेरी कहानी !

❀ ❀ ❀ ❀

तिवारी जी की अनुभूति बहुमुखी है ! उनकी भावुकता का एक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दूसरा रुख भी है ! एक ओर यह कवि ऐसी मस्ती और तल्लीनता से प्रेम के गीत गा सकता है और किसी ख्वाब की दुनिया की रानी के लिये अपना सारा चीत्कार, अपना सारा ममत्व उँड़ेल सकता है तो दूसरी ओर जीवन का दारिद्र्य और संघर्ष, भूखों की विभीषिका, नंगों का आर्तनाद भी वह इसी प्राणोन्मादना के साथ चित्रित कर सकता है ! "एक वृद्ध भिखारी" और उसके दो बालकों का तथा "कवि और वेश्या" शीर्षक कविता में वेश्या का कितना साफ़ और सफल चित्र है! इसके साथ ही कवि का क्रान्तिकारी यौवन "चले पुजारी दीवाने !" और "हुआ क्रान्ति का भीषण गर्जन" शीर्षक कविताओं में सिंह की तरह दहाड़ता है ! जैसे कि कवि की प्रेम-भरी कविताओं में अश्लीलता नहीं—सात्विकता है—इश्क़ मज़ाजी में, शारीरिक प्रेम में—इश्क़ हक़ीक़ी—आध्यात्मिक प्रेम की तरह उच्च आत्माभिव्यञ्जना है—जिस तरह विरह के तप्त आँसुओं में निष्कलुषता है—उसी तरह कवि की करुणा-रस प्रधान कविताओं में भी सात्विक करुण आँसुओं की झलक है। कवि का करुणा-प्रधान हृदय "करुणे !" शीर्षक कविता में कहता है:—

साँस-साँस में आज सर्प की, विष-फुंकारें ललक रही हैं
जग-पनघट पर आज ख़ून से, भरी गगरियाँ छलक रही हैं
करुणा-पयस्विनी ! बह निकलो, तुम नयनों की धाराओं में
दुग्ध-निर्झरों-सी तुम फूटो, अस्थि, रक्त की काराओं में
चरण सुदामाओं के धोओ, मेरे चक्षु-पात्र में करुणे !
मेरी पलकों में तुम बुन दो, अगणित अलकाओं को करुणे !
मेरी मुट्ठी भर मिट्टी को, अपने चरणों में लिपटाना
मरने पर भी मेरे दृग में, आँसू बनकर तुम ढुल जाना"

आज हमारे आदर्शों में—हमारे मानस की तस्वीरों में जो द्वन्द्व चल रहा है वह कवि के सामने है ! कवि कहता है:—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रक्त-पथ-पंथी जगत् का शांति हो, गलहार कैसे ?
दृश्य जग का बिम्ब लेने में, बना आकाश-दर्पण
ठोकरें गिनने जगत् की बन गया पथ-धूलि का कण

❀ ❀ ❀

विश्व-पुञ्जीभूत करुणा, हाय ! चिथड़ों में लपेटे
मृत्यु के भीषण कगारे, पर खड़े जीवन समेटे
शान्ति-सुन्दरि और कवि के नयन हों फिर चार कैसे ?
अश्रु-जल औ' आह का जब तापगतिमय व्याप्त होता
हाँ तभी दैवत्व का नैतिक जगत् निर्माण होता
झाँक मानव भूत के वातायनों में झाँक तो ले !
विश्व-ऊषा की सुनहली, शांति-छवि वह आँक तो ले !
तू हृदय के बुद्ध, गाँधी औ' मसीहा देख तो ले !

इससे यह स्पष्ट होता है कि कवि युग-धर्म की आँच से नहीं बचा है। इसी तरह "भारत का भग्न-भवन" शीर्षक मार्मिक कविता में वह भारत के पतन पर आँसू बहाता है !

'इन्द्र-धनुष" की कविताओं को स्थूल रूप से कवि ने सात भागों में विभक्त किया है, किन्तु अधिकांश कविताओं में इस करुण-हृदय कवि के आँसुओं को ही बहते हुए हम पाते हैं—इस कवि के। आँसू यदि एक ओर प्रेम-विरह में, सौंदर्य्य की खोज में, उन्माद में, कसक में, आशा में, निराशा में, संक्षिप्त में—प्रेमांतर्गत विविध भावनाओं में मोती से चमकते हैं—दीप-वर्त्तिका से मूक-नीरव जलते हैं—जलते हैं और जलाते हैं—रोते हैं और रुलाते हैं तो दूसरी ओर "ग़रीबों की दुनिया" में 'भारत के भग्न-भवन' में 'ताजमहल' आदि में भी अविरल टपकते हैं ! कवि के आँसुओं में प्रतिक्रिया-स्वरूप क्रियमाण चिनगारियाँ भी हैं जो विद्रोह की—क्रांति की—लेखनी से यों बिखर पड़ती हैं:—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

" चले पुजारी दीवाने !

माँ-मन्दिर का करने पूजन, चले पुजारी दीवाने !
लौह-करों की वे दीयट पर, दीप-शिखा तलवारों की धर
शीश-आरती उतारने को, चले पुजारी दीवाने !
तथाः—इन्हीं ग़रीबों की मिट्टी से, बनते हैं तोंदों के मटके
अरे ! सैकड़ों भगवानों का, तू ही तो भगवान सखे !
अति का अंत सदा दुखमय है, बेकस आँसू ज्वालामय है
छिपा आह में जग का क्षय है, अन्त, सत्य की अमर विजय है
सूर्य्य, चन्द्र के रथ भी ठमके, सुप्त शंख सागर के गमके
भीम, भीष्म लाखों आ धमके, शोणित-कण वीरों के बमके
उमगे " जय जय " के उच्चारण
हुआ क्रांति का भीषण गर्जन

❀ ❀ ❀

स्थानाभाव से लेखक की अनेक सुंदर पंक्तियाँ को उद्धृत नहीं किया जा सकता ! पूरा काव्य-ग्रंथ पढ़ने पर ही इस विकासोन्मुख प्रतिभाशाली कवि के अश्रु-ज्वालामय हृदय का पता लग सकता है।

अन्त में मैं कवि के शब्दों में यह कहना चाहता हूँः—

मूर्त्तियाँ आदर्श की शुचि, अश्रु-मंदिर में रखी हैं
अश्रु ही तो सीढ़ियाँ, सर्वोच्चता के स्वर्ग की हैं
कर्म के ये मर्म-पथ हैं, द्वार, जग-बन्धुत्व के हैं
अश्रु-दर्पण में झलकते, ब्रह्म, शिव औ' सत्य, सुन्दर
शब्द-गागर में भरे जा, तू हृदय के अश्रु-सागर

कवि में छन्द-शक्ति और शब्द-शक्ति प्रचुर मात्रा में है ! कवि ने ब्रज, उर्दू आदि के कोमल, मधुर और चलते हुए शब्दों को खूब अपनाया है। आधुनिक अधिकांश कवियों की तरह कवि में शब्दाडम्बर और अस्पष्टता नहीं है ! कविताएँ स्पष्ट, सरल, अनुभूतियों, भावनाओं,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विचारों और कल्पनाओं से ओत-प्रोत हैं !

तिवारीजी से हिन्दी-संसार को बहुत-कुछ आशाएँ हैं और आशा है कि हिन्दी-संसार इस नवयुवक कवि के इस प्रथम काव्य-संग्रह "इन्द्र-धनुष" का पर्य्याप्त आदर कर अपनी सहृदयता और गुण-ग्राहकता का परिचय देगा !

प्रयाग
३१-३-३९

"अञ्चल"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मानस-मेघ-मुकुर जब मैंने, जग के रवि-कर में दे डाला,
"इन्द्र-धनुष" की साड़ी पहने, झलकी उर की करुणा-बाला !

❀ ❀ ❀

जग-ज्वाला जब अश्रु-घटा बन, नभ के विस्तृत दृग में व्यापी,
"इन्द्र-धनुष" पंखों को फैला, नाचा कवि-उर-करुण कलापी !

❀ ❀ ❀

प्रेम-योगिनी, स्वयंवरा यह, व्योम-वरण-इच्छुक क्षिति-बाला,
युग से फैले क्षितिज-करों में, जब थी धारे नीरद-माला;

❀ ❀ ❀

रवि-कर मिस तब क्षितिज-दिशा से, करुणाकर के करुणा-कर ने
"इन्द्र-धनुष" का अञ्चल खींचा, भू-नभ का गठ-बंधन करने !

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आत्म-परिचय

दुख की नैया खेता हूँ मैं, आहों की पतवार लिये,
जीवन-घड़ियाँ गिनता हूँ मैं, साँसों के दो तार लिये !
तामस-पथ में भटक रहा हूँ, प्राणों का अंगार लिये,
बैठा हूँ मैं टीस भरा हा !, आहों का संसार लिये !
जग-कण्टक पर रक्त-विंदु-सा, उलझा; जीवन-सार लिये,
पलकों-सा मैं झूम रहा हूँ, सपनों का दुख-भार लिये !
जलता है उर मेरा क्षण-क्षण, ज्वाला का अवतार लिये,
आँखें मेरी उमड़ी पड़तीं, सावन के उद्गार लिये !
पुत्तलिकाएँ जड़ी हुई हैं, तम-निशि का आकार लिये,
गिरा शिथिल अधरों पर सोई, जीवन-उपसंहार लिए !
भग्न "ताज" प्राणों का मेरे, भू-कम्पन-संसार लिये,
साँस-साँस उड़ती है मेरी, अरे ! बवण्डर-भार लिये !
भाग्य-क्षितिज है हँसता मुझ पर, शिशिर-प्रात-उपहार लिये,
चिंगारी के घन से उमड़े, रोम-रोम, उर-ज्वार लिये !
ताण्डव-नर्तन बना हुआ हूँ, प्रलयों का अभिसार लिये,
धूम्र-गगन मैं बुनता ज्वालामुखियों का अम्बार लिये !
जीवन मेरा हार चुका है, जीवन की ही हार लिये,
दुख की नैया खेता हूँ मैं, आहों की पतवार लिये !

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कौन बँटाये उर की पीर ?

कौन बँटाये उर की पीर ?
किसके प्राणों के तरकश में, रख दूँ अपने उर के तीर ?
किसको मैं दिखलाता भटकूँ, मृदु अन्तस्तल के अंगारे ?
किसकी आँखों की डिबिया में, रख दूँ अश्रु-कणों के तारे ?
किसकी सुरभित साँसें जकड़ूँ, फैला आहों की ज़ंजीर ?
कौन बँटाये उर की पीर ?
किस होली की लपटों में मैं, भर दूँ अपनी दाहक ज्वाला ?
किस नभ को पहनाऊँ दृग की दुखमय धूमिल नीरद-माला ?
हाय ! समाऊँ किस पुतली में, बन कर करुणा की तसवीर ?
कौन बँटाये उर की पीर ?
किस वीणा के मधु-तारों में, अपनी सिसकी के स्वर भर दूँ ?
किस कोकिल की कल कूकों में, अपनी हूकों को भर-भर दूँ ?
किस चकई को मुग्ध करेगी मेरे शोलों की तासीर ?
कौन बँटाये उर की पीर ?
अश्रु-जड़ित मुख पोंछूँ अपना, दूर क्षितिज के किस अञ्चल से ?
क्षणिक सान्त्वना माँगूँ जीवन, के किस उड़ते कोमल पल से ?
किस नवनीत-मृदुल अञ्चल से, बाँधूँ टीसों की मैं भीर ?
कौन बँटाये उर की पीर ?
किस खँडहर की साँय-साँय को, मूक शून्यता सौंप चलूँ मैं ?
किस मरु-तप्त-बवण्डर को निज, उर की धड़कन सौंप टलूँ मैं ?
किस काँटे को मैं दे डालूँ, अपनी कसकन की जागीर ?
कौन बँटाये उर की पीर ?
किस वन के मैं अन्तराल में, भर दूँ हृदय-विदारक क्रन्दन ?
किस अम्बुधि में, अब तैराऊँ तूफ़ानों का पागल कम्पन ?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पञ्चतत्त्व के पात्रों में क्या, भर दूँ प्रलयी आँसू-नीर ?
कौन बँटाये उर की पीर ?

भार स्वयं का हाय ! स्वयं ही, नहीं उठाने हूँ मैं पाता
कहो कौन मानवता मेरे, दुख से जोड़ेगी फिर नाता ?
उर-सागर में दुःख-तरी यह, डूब लगेगी अब तो तीर
कौन बँटाये उर की पीर ?

मक्खी के पंखों-सा लिपटा, जग यह सुख-दुख के भ्रम-मधु में
किसी और का विष फिर घोले, कौन यहाँ क्यों अपने मधु में ?
नीलकण्ठ ! तू विष पी अपना, अब तो समझ-समझ कर धीर ।
कौन बँटाये उर की पीर ?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उड़ चल मेरे प्राण रे !

उड़ चल मेरे प्राण रे !
नीलम-नभ के उन मतवारे, श्यामल धूमिल वे कजरारे
मुक्ति-विजय के मुखर नगारे, अपने सुख में ही गदरारे,
मेघ-वनों में प्राण रे !
उड़ चल मेरे प्राण रे !

चपला-चितवन मय अनियारे, अमृत के वे दिव्य फुहारे
सुर-धनु पंखी प्यारे-प्यारे, वे मयूर से मेघान्यारे
छायामय निर्वाण रे !
मेघ-विहग बन प्राण रे !

स्वतन्त्रता के मधु से धोये, रिमझिम-नूपुर-ध्वनि में खोये
यौवन-श्री में सोये-सोये, जगत्-ताप ये ढोये-ढोये—
फिरते स्वर्ग-विमान रे !
मेघ-यान बन प्राण रे !

तोड़-तोड़ यह माँसल पिञ्जर, अस्थि-रचित यह बन्धनमय घर
बनजा विस्तृत अम्बर-सागर, बन कर मेघों की तू गागर—
छलका "छल-छल" गान रे !
उमड़ मेघ से प्राण रे !

वायु-वेलि के नील कमल वर, नभ-पंखी ये मेघ विहग वर
पर मैं आँसू का हूँ निर्झर, विद्ध क्रौंच-सा शरमय जग पर
करते ये आह्वान रे !
मेघ-व्यजन बन प्राण रे !

मेघदूत ये जीवन-जलधर, नभ के चल-नन्दन-वन सुन्दर
जग की कारा को ही ले कर, आज उड़ूँ मैं नभ को छू कर—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

डोलूँ वन पवमान रे !
तोड़ वक्ष अब प्राण रे !

मेघ-मराल-माल तू बन कर, क्षितिज-पार अज्ञात तटी पर—
जहाँ मुक्ति का मानसरोवर, वहीं लगा कर अम्बर के पर—
उड़-उड़ मेरे प्राण रे !
उड़ चल मेरे प्राण रे !

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रलय-गान

उड़ चलूँ मैं इस जगत् में, एक झंझावात बन कर,
हाँ, प्रलयकारी शिशिर-ऋतु, की सिसकती आह बन कर!
थरथरावे पत्र-सा जग, उस बवण्डरमय लहर में,
तोप दूँ नभ को घुमड़ते, मेघ का अम्बार लेकर!
जल-समाहित विश्व होवे, बादली गुम्बद तले फिर,
चीर दूँ मैं सिंधु-उर को, वायु-पद धर कर भयंकर!
रोष-कम्पित-केश मेरे, विटप-गण मिस हों प्रकम्पित,
क्रान्ति-ध्वज-सा फरफराऊँ, नभ-अवनि के हृत्तलों पर!
चन्द्र-रवि-संघर्ष देवें, ताल, ताण्डव-नृत्य पर उस,
फट पड़े विस्फोट-सा यह, राख का तन आज उड़ कर!
काँप उट्ठे मृत्यु-ज्वर-सा, क्रूरतामय क्षुद्र जग यह,
मुक्ति का तब गीत गाऊँ, मैं प्रलय की गर्जना कर!
"आह से ही आह मरती, नव्य जीवन मृत्यु में है",
मैं विसर्जन में सुनाऊँ, सृष्टि का संगीत सुख कर!
उड़ चलूँ मैं क्यों न अब, "सत्यं, शिवं" गुञ्जार कर ही,
विश्व-वेदन-आह बन बस, उड़ चलूँ जग को उड़ा कर!
वायु-गुम्फित भैरवी वह, गूँज सोये नभ-अधर पर,
शून्य के नव शङ्ख में वह, फिर जगे जय-नाद बन कर!

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जल-जल मेरे आकुल उर रे !

जल-जल मेरे आकुल उर रे !
दुख की ज्वाला में ही जल कर, होता तू आँखों का पानी
स्वयं स्वर्ण तू स्वयं कसौटी, दर्पण, बिम्ब, स्वयं लासानी
अभिलाषाओं की ज्वाला में, घृत-आहुति बन कर तू जल जा
नयनों के करुणा-अञ्चल में, मधु-मोती बन कर तू ढल जा
जग के मुक्ता से आँसू तू, सीपी बन कर भरता ही जा
अपने आह-व्यजन से इस श्लथ, जग के श्रम-कण हरता ही जा
नयन-कसौटी पर बतला दे, अय उर ! अपना स्वर्णिल पानी
नयनों के दर्पण में दिखला, दुनिया की करुणा दीवानी
होवे तुझ पर उन्मादों का, अविरल ही नव ज्वाला-नर्तन
तेरी वीणा में हो झंकृत, हृदय-विदारक जग का क्रन्दन
निर्मल हीरों की वर्षा से, मोल प्राण का तू करता जा
उच्छ्वासों की आँधी में भी, हृदय-दीप तू जलता जा
बह-बह कर इन आँखों से तू, जग का भार बहाता ही जा
पलक-विजन में सपनों के तू, नित नव-विश्व बसाता हो जा
अपने दर्पण में कर बिम्बित, सुख-दुख के पुतलों की छाया
मानवता तव प्राणों की हो, जीवन-नाड़ी, अयि-उर-काया !
इस दुनिया के सप्त-स्वरों की, प्रतिध्वनि बन कर गूँज उठे तू
नीरव नयनों की भाषा में, जीवन अपना फूँक उठे तू
तवअभावमय छिद्र स्वरित हों, दर्द-भरे-स्वर में उर-मुरली !
बीन-बीन अयि हृदय-बीन री ! विश्व-स्वरों की वर-वर अवली
बन करुणा प्रति उर की उर रे !

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

करुणे !

करुणा-कपोतिनी ! तुम मेरी, किस अज्ञात दिशा से आतीं ?
स्वयं बन्दिनी बन कर तुम क्यों, हिय-पिञ्जर में रहने आतीं ?
मानवता के पंख लगाये, तुम उड़ आतीं सात समुन्दर
नयनों में तुम नीड़ बनातीं, तिनके आँसू के चुन-चुन कर
विश्व-बाल जब निशि में सोता, तभी एक टक तुम जगदम्बे !
तारों के लघु वातायन से, लखती रहतीं करुणा अम्बे !
साँस-साँस में आज सर्प की, विष-फुङ्कारें ललक रही हैं
जग-पनघट पर आज खून से, भरी गगरियाँ छलक रही हैं
करुणा-पयस्विनी ! बह निकलो, तुम नयनों की धाराओं में
दुग्ध-निर्झरों-सी तुम फूटो, अस्थि, रक्त की काराओं में
आँसू के तारों से बुन दो, मानव-उर के लघु-लघु अम्बर
गला काटनेवालों को तुम, गले मिला दो, देवी ! सत्वर
मानवता का महाद्वार तुम, प्राण, पुतलियों से रच जाओ
आँखों के अङ्गारों से भी, पानी बन-बन कर ढुल जाओ
मानव की तुम माँ हो करुणे ! मानवता की मानवता हो
बुद्ध, मुहम्मद, ईसा, गाँधी, की तो तुम्हीं अमर माता हो
जग की आहों में तुम मेरी, जीवन-साँसें गूँथो करुणे !
चरण सुदामाओं के धोओ, मेरे चक्षु-पात्र में करुणे !
मेरी पलकों में तुम बुन दो, अगणित अलकाओं को करुणे !
मेरी आहों, आँसू में तुम, डोलो मेघदूत बन करुणे !
मेरी मुट्ठी भर मिट्टी को, अपने चरणों में लिपटाना
मरने पर भी मेरे दृग में, दो आँसू बन तुम ढुल जाना।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उड़ चले हैं अश्रु मेरे !

(१)

उड़ चले हैं अश्रु मेरे !
विश्व-करुणा पूजने को, आरती बन, अश्रु मेरे !
उड़ चले हैं अश्रु मेरे !
वेदना के गान गाने, मानवी स्वर को जगाने,
चक्षुओं के स्नेह-रीते, दीपकों में लौ लगाने
विश्व की गहरी अमा में, डबडबाये करुण दृग से—
दीप बन कर उड़ चले हैं, स्नेह-आकुल अश्रु मेरे !
उड़ चले हैं अश्रु मेरे !

(२)

फोड़ कर कलकण्ठ मेरा, तोड़ कर मृदु वक्ष मेरा—
करुण सिसकी से सना, उर-गान, बंधन तोड़ मेरा—
विश्व-पथ पर अंध-भिक्षुक-सा चला वह मर्म-बेधी—
फिर रहे उस भिक्षु की कर-माल बनकर अश्रु मेरे !
उड़ चले हैं अश्रु मेरे !

(३)

आह की चिंगारियों में, हास की फुलवारियों में,
दानवी मानव-जनित सिसकारियों, किलकारियों में—
मानवी सम-आर्द्रता भरने तथा कटुहास-रोदन—
प्रेम-बन्धन-बद्ध करने उड़ चले हैं अश्रु मेरे
उड़ चले हैं अश्रु मेरे !

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

(४)

क्षितिज-पलकें मेघ बन कर, भार-नत करुणार्द्र बन कर,
श्लथ, सजल, उस पार से इस पार गिरतीं गगन भर कर
प्यास भर कर, आग भर कर, विश्व के इस शुष्क तरु पर—
बन पपीहे, चीखने को उड़ चले हैं अश्रु मेरे
उड़ चले हैं अश्रु मेरे !

(५)

मृत्यु के उस पार, वन में, शांति, करुणा के विजन में—
स्वेद-हारी प्रकृति-पलकों की हरी छाया सघन में—
सुप्त होती साँझ, निशि बन, पथ-थकित ऊषा, जहाँ पर—
बस वहीं खद्योत बन कर, उड़ चले हैं अश्रु मेरे
उड़ चले हैं अश्रु मेरे !

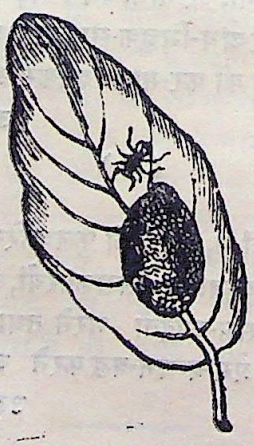

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गीत

कौनसा यह स्वप्न बोया ?
नत पलक के तम-गगन में, स्वप्न-तारक कौन बोया ?
आँख का तारा बनी तू, ज्योति का संसार लेकर,
दृष्टि-किरणें बुन रहीं तव, चन्द्रिका-सा हास मृदुतर;
श्वास के प्रति तार ने तव, अमिय-सिंचित-स्वर पिरोया।
मन्दिरों की घण्टिका-ध्वनि-सी बनी शुचि प्राण-धड़कन
आज उर की हूक में, पिक-कूक का होता निनर्त्तन;
प्रेम-रव तव कोकिले ! उर-शङ्ख में मम गूँज सोया।
है भरित प्रति अश्रु-कण में, हास का तव रौप्य-सागर
रूप-पय-पथ है खचित तव, पुत्तली की तम-अमा पर
आलवालों पर अधर के, प्रेम-चुम्बन-बीज बोया।
स्वप्न-पङ्किल हे विहङ्गिनि ! श्वास-नीड़ों की सुवासिनि !
आर्द्र उर-मृत्स्ना-मृणालिनि ! प्रेम-मानस-राज हंसिनि !
उरि-पुलिन मम, प्रेम-गङ्गा वन, प्रिये ! तूने डुबोया !
उठ गई सौंदर्य्य-पलकें, तृप्ति, तृष्णा बन बढ़ी अब;
वेदना-बल्ली बढ़ी उर-द्वार नयनों से खुले अब;
हास-अधरों पर प्रिये ! मैं, आह बन कर आज खोया !

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यह समस्या प्रेम की हासाश्रु-सी अति गूढ़ है क्यों ?
हास-नभ पर प्रेम के हा ! अश्रु-घन आरूढ़ है क्यों ?
स्वर्ग-तृष्णा बन प्रिये ! घन-सा घुमड़ मैं खूब रोया !
भावना के खण्डहर में, इन्द्र-नगरी-सी बसी तू ;
दृष्टि के व्रज-कुञ्ज में बस, राधिका बन कर लसी तू ;
पुष्प-शय्या तू बनी मैं, सुरभि-अम्बर तान सोया ।
तव प्रणय-कर्पूर-दीयट, पर जला मैं आरती बन ;
चार नयनों के गगन में, तन गये हम इन्द्र-धनु बन ;
अश्रु-निर्मित " ताज " तू मैं, बन कला-सौंदर्य्य खोया ;

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

साधना

चक्षु-योगी अश्रु-माला, फेरते, तव ध्यान धर कर!
आज पलकें गड़ गईं, तेरी प्रिये! तसवीर बन कर!
आह-पथ पर, बन प्रतीक्षा, है समाहित प्राण मेरा,
गिर रहे हैं अश्रु मेरे आज तो दुर्भाग्य बन कर!
ढूँढते उर-नैन तुझको, अश्रु की चल-मूर्ति बन कर,
साँस अटकी है अधर पर, जोगिया का राग बन कर!
हैं अधर निःस्पन्द उजड़े, नीड़-से कम्पित प्रिये! हा!
जल रहे तारे दृगों के, आज फिर अङ्गार बन कर!
पुतलियों के शून्य चौखट, पर जड़ी अब तम-अमा है,
दृष्टि-शय्या पर शयित है, चाँदनी उपहास बन कर!
हैं प्रकम्पित आज पल्लव, वेदना-स्वर- मीड़ बन कर,
हँस रहे नक्षत्र, नभ में, प्रेम-चुम्बन-चित्र बन कर!
वायु गाती करुण-स्वर में, कर्ण-वीणा पर प्रिये! अब,
धूलि उड़ती उर-जगत की, शून्यता का भार बन कर!
उड़ रहे खग-वृन्द नभ में, विकल दर्शन-प्यास बनकर,
रो रहे हैं मेघ मेरे, भग्न-उर के खण्ड बनकर!
उठ रहे देखो बवण्डर, उर-मरुस्थल-ज्वार-बनबन,
खण्डहर-सा दीखता जग, आह का संसार बनकर!
उर-विपिन में कण्टकों का, अब अमर मधुमास छाया,
अब शिशिर-ऋतु झूलती, उर-कुञ्ज में विष-बेलि बनकर!
जल रहा धूनी बना मैं, विरह-ज्वाला आज बन कर,
नाचती रसना प्रिये! तव, नाम का रट-रास बनकर!

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है प्रिये! मृग-चर्म यह भू, शून्य नभ, मम भग्न-कुटिया,
प्रेम के अज्ञात पथ पर, चल रहा मैं साध बन कर!
दृग-उँगलियाँ फेरतीं तव, चन्द्र-मुख की प्रेम-माला,
बस गई है उर-कुटी में, याद तेरी मूर्ति बनकर!

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रतीक्षा

प्रिये ! प्रतीक्षा है अति गहरी !
दृग-डगरी में राह देखते, नीरव आँसू के प्रहरी !
प्राणों के पर्य्यङ्क-पाश में, बँधी रुग्ण नैराश्य-अमा है,
विरस ! अधर कूलों से टकरा, रोती आहों की लहरी !
रमा रहे हैं साध-वीथिका, पर उर-धूनी, श्वास-तपस्वी,
ढुलक रही निशि-वासर दृग की, प्रेम-सुधा-मय लघु गगरी !
विरह-स्वप्न-कृत ताज महल हैं, पलकों के युग यमुना-तट पर,
सुधि-निशि दीपोत्सव में तेरे, जलतीं रोओं की दिअरी !
विरह-व्यथा की विभावरी का, बना हुआ हूँ मैं अवतारी,
रो, रो, उषा बने दृग मेरे, डूबे आँसू-उडगन री !
प्रिये ! प्रतिक्षा है अति गहरी !

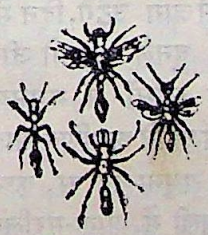

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अलबेला जग

जग दो प्राणों का अलबेला, आओ हम तो रचें प्रिये!
प्राण-प्राण का होवे चुम्बन, साँसों-साँसों का आलिङ्गन
अधरों पर हो प्रेम-प्रकम्पन, दो हृदयों का इक हृत् कम्पन;
एक दूसरे के नयनों में, अश्रु-नयन बन बस जाएँगे!
अपनी ही हम अधर-कली पर, हास्य मधुर बन खिल जायेंगे
प्रेम-काव्य हम अश्रु-हास की, मसि से, आओ लिखें प्रिये!
साँसों के बस पंख लगा कर, चुपके से उर में आ जाना
हृदय-विटप के नीचे बाले! छाया बन कर तुम सो जाना
प्राणों का तम घनीभूत कर, दृग-अञ्जन बन हम लग जाएँ
गुँथी एक ही साँस-डोर से, दो काया की चञ्च उड़ाएँ
अस्फुट प्राणों के हम सस्वर करदें नीरव तार प्रिये!
विरह-दुपहरी लेकर समझो, भाग्य हमारा यदि आयेगा
प्राणों का कर्पूर हमारा, उड़-उड़ कर भी मिल जायेगा
सोयेगी निशि-बाला आँखों में, बन अति ही शीतल अञ्जन
कमल-दलों से जाग उठेंगे, दिन में नयनों के लघु खञ्जन
सरल भावनाओं से बुनलें, आओ जीवन-जाल प्रिये!
एक दूसरे की साँसों में मधुमय बंसी मुखरित करदें
कण-कण के अन्तर में अपने अगणित मादक विश्व बसादें
तव आँखों के यमुना-तट पर, कृष्ण चन्द्र बन मैं विहरूँगा
तेरे उर की कुञ्ज-गली में, प्राण-मुरलिका बन गूँजूँगा
उस दुनिया के हम बन जाएँ, आओ राधा-कृष्ण प्रिये!

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रणयानुभव

सुन्दरता की प्याली में तू, सुरा प्रणय की भर कर लाई,
मेरे प्यासे नयनों को फिर, नयनों में भर खूब पिलाई!
मन्दाकिनी, मधुर मदिरा की, तेरी आँखें अयि मधु-बाले!
बरस रही हैं मधुशालाएँ, तेरे रोम-रोम से बाले!
अधर-पंखुड़ी पर जब तूने, खींची हास-चन्द्रिका-रेखा,
आल्हादित मैं हुआ समझ कर, भाग्य-भाल की स्वर्णिल रेखा
चितवन का मधु-जाल फेंक कर, हृदय-मीन यह फाँस लिया क्यों?
प्रेम-गगन में हृदय-चंग यह, उड़ा-उड़ा कर छोड़ दिया क्यों?
पुतली के काले घूँघट में, मृदु-मुख-चन्द्र छिपा कर तेरा,
अन्तर की आँखों में हँस-रो, कर लेता हूँ साँझ-सवेरा!
सावन मास बसा आँखों में, अब तो मेरे उर में छाजा,
अरे! बढ़ा अब प्रेम-पैंग तू, आहों के झूले पर आजा!
कुसुमाकर अब हृदय-विटप पर, प्रेम-कुसुम बन कर है हँसता,
प्रणय-कुञ्ज-कोकिल! पर तेरा, प्रणय-गान क्यों चुप है रहता?
पुतली की तू चित्रपटी पर, चित्रित है गुलाब-सी सुन्दर,
अश्रु-ओस के अर्घ तभी तो, देता उर, दृग-अञ्जलि भर कर!
डूब गई है मदिरा बन कर, दृग की प्याली में तू मेरी!
हृदय-शलभ के पास रही जल, बन सौंदर्य्य-दीप, तू मेरी!
छुई-मुई-सी पलकों का तव, भार हाय! मम दृष्टि बनी है,
पर मुझको तो चितवन तेरी, जीवन-कारागार बनी है
हृदय, प्राण की नौकाओं को, प्रणय-उदधि में छोड़ दिया है,
अश्रु-परिधि में आज अमर निस्सीम प्रेम को बद्ध किया है
हृदय, प्राण की दीयट पर तू, अग्नि-शिखा-सी झिलमिल करती
अश्रु-कणों के दर्पण में तू, प्रतिबिम्बों-सी टलमल करती

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आज वह छवि देखली !

आज वह छवि देखली !
पुतलियों की प्राण-पुतली, रूप-छवि वह देखली !
ध्यान-मंथित, रूप-ध्रुव, दृग-तारकों में खींच लाया;
पुतलियों को नील नभ-सा, नीलमी मन्दिर बनाया;
अश्रु-सुरसरि को बहा कर, साध-तीर्थस्थल बनाया;
प्रति वरुनि में रूप-प्यासा, प्राण, दृग बन कर समाया;
फिर पलक के घूँघटों को, डाल, वह छवि देखली;
आज वह छवि देखली !

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अज्ञात-वेदना

दुरित हुए हैं फिर दुर्दिन की, मेघ-माल में दृग-दिनमान;
किस अज्ञात वेदना से फिर, सिहर उठे हैं मेरे प्राण!
रोम-रोम प्रति शत चातक-से, करते अमर-तृषा-आह्वान,
आज फुहारों-से हैं छूटे, उर में सोये आकुल गान!
आज पवन बन कर है उड़ती, भौतिक सीमा, मेरी, प्राण!
हरियाली-सी है लहराती, तेरी सुधि जो थी निष्प्राण!
आज अचानक बिछी हृदय में, हूकों की फुलवारी, प्राण!
बिजली-सा मैं तड़प रहा हूँ, मेघों-सा गंभीर महान्!
मन-मयूर फिर "कहाँ? कहाँ?" कह, उड़ता सुर-धनु-पंख पसार,
भाव-भ्रमर मँडरा कर करते, मधुमय ऋतु की करुण पुकार!
प्रणय-वाटिका में बन तितली, खोलूँ कली-कली के द्वार,
मैं ही वर्त्ति बनूँ, लौ मैं ही, मैं ही प्रेम-शलभ-अवतार!
पर्ण-पंख फैला कर नाचूँ, बन समीर-सा मुक्ताकार,
टकराऊँ मैं क्षितिज-तटी से, बन कर एक टीस-टंकार!
आज अधैर्य्य, अतृप्ति आदि का, बना हुआ मैं चिर-आगार,
वक्ष तोड़ कर निकल रहा उफ़्! मेरे उर का हाहाकार!
एक आह का झोंका बन या, अश्रु-भरित-सा-नीरद-यान,—
बन कर उड़ूँ, गिरूँ आँसू-सा, तेरी कुसुम-क्रोड़ में प्राण!
कैसी प्रणय-वेदना ज्वर-सी, काँप रही तन, मन में, प्राण!
हिय-मन्दिर के ये दृग-गोमुख, झरने लगे, अचानक, प्राण!

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कुछ तो बोलो !

सुन्दरि ! कुछ तो बोलो !
तुम मुसकान-तुला पर मेरे, खारे आँसू तो तोलो !
सुन्दरि ! कुछ तो बोलो !

अपने नयन डुबोकर नापो, मेरी दुखिया आँखों को तो !
शून्य प्रतीक्षामय पलकों की, प्यार-भरी इन पाँखों को तो !
कितने नभ हैं डूबे इनमें, हिय-पोरों से गिन तो लो !
सुन्दरि ! कुछ तो बोलो !

चाहो तो तुम आग लगादो, मेरे तन में, मन में, रानी !
चाहो तो आँखों में भर दो, सात समुद्रों का भी पानी !
पर अयि मेरी कोकिल-बाले ! कुहू-कुहू कर कुछ बोलो !
सुन्दरि ! कुछ तो बोलो !

यौवन का कर्पूर रहा जल, आज प्रणय की ज्वाल लपेटे,
प्राण-पपीहा आज जगा है, स्वयं प्यास की प्यास समेटे;
प्रेम-भरी चितवन से सुन्दरि ! मेरी ज्वाला पी तो लो !
सुन्दरि ! कुछ तो बोलो !

कलरव करलें, इस जग-तरु पर, हम दो पंछी हैं अनजाने,
नियति-पंख पर उड़ जाएँगे, कौन देश फिर? हम क्या जाने ?
दृग के यमुना-तट पर बाले ! राधा बनकर तो डोलो !
सुन्दरि ! कुछ तो बोलो !

माना तुम प्रकाश अति उज्ज्वल, सूर्य-चंद्र की भी परिभाषा !
पर मैं अन्धकार ही तुमको, देता हूँ किरणों की भाषा;
उर-प्याले की मधु-सीमा में, मुझको आज डुबो तो लो !
सुन्दरि ! कुछ तो बोलो !

15745
CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नीलकण्ठ हूँ लाओ पीलूँ, कालकूट के अगणित सागर,
इन्दु-मुखी ! मस्तक पर धारूँ, पर मैं तुमको इन्दु बनाकर,
यौवन-मधु में बोल-बोल कर, बीज प्रेम के तो बो, लो !
सुन्दरि ! कुछ तो बोलो !

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पा सकूँगा मैं तुम्हें क्या ?

पा सकूँगा मैं तुम्हें क्या ?

पूछती हरएक धड़कन, पूछती हरएक कसकन,
पूछती हर आह मेरी, पूछता हर साँस-कम्पन,
इस हृदय की मूक भाषा, प्रतिध्वनित हो पूछती है—
पा सकोगे तुम उसे क्या ?

जल रही दृग-दीयटों पर, आरती-सी छबि तुम्हारी,
खिंच गई उर-मोम-पट पर, भूल-सी रेखा तुम्हारी;
रेख वह आकारमय हो, कर रही यह प्रश्न मुझसे:—
खोज पाओगे मुझे क्या ?

बन गई मेरे लिये निस्सीम वन-पथ-सी प्रिये ! तुम,
दृष्टि-भ्रम-निस्सीम सीमामय क्षितिज की कोर-सी तुम;
लुप्त वन-पथ-सी, क्षितिज-सी, तुम सरक कर कह रही हो—
छू सकोगे तुम मुझे क्या ?

जब हृदय होता अचानक, वेदना-अवतार-धारी,
तब स्वयं संगीत होता, आह के स्वर का भिखारी;
हो प्रकम्पित, रोम में प्रति, प्रश्न पर वह, कह रहा यह—
पा सकोगे तुम उसे क्या ?

स्वर्ग-सपने आज पलकों, के बने सानन्द प्रहरी,
प्रेम के इस पर्व-सागर, में लहर इक रुग्ण सिहरी—
पूछती उठ तर्जनी-सी, इस भटकते उर-पथिक से—
भँवर-पथ में ढूँढते क्या ?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वह रहे थे भव-जलधि में, सैकड़ों नर लघु लहर-से,
वल्लरी से गुँथ गये तब, हम डगर में, दो लहर से,
लहर-वाले ! पर तुम्हारे, भँवर के भ्रम-फूल कहते:—
तोड़ लोगे तुम हमें क्या ?

तुम फुहारे-सी हँसोगी, फूल के तट से लिपट कर;
अश्रु-सा छिटका करूँगा, मैं तटों से सिर पटक कर;
मैं निराशा की लहर,—तट-तट भटक पूछा करूँगा:—
पा सका, हा ! मैं उसे क्या ?

"प्यार करता हूँ तुम्हें" ये शब्द भी मैं कह न पाया,
जल रहा कब से प्रिये ! पर राख भी मैं हो न पाया;
प्राण की जलती चिता बस, पूछती निशि-दिन धधक कर—
प्रेम यानी आग है क्या ?

दृग-गगन का है बदा इक, पोर भर जिसको कि टुकड़ा;—
दुर्दिनों के अश्रु-मेघों, का वही मैं एक टुकड़ा;
अश्रु बन-बन मैं टपक कर; धूलि से पूछा करूँगा:—
प्रेम का है फल यही क्या ?

हाय ! जग-बन्धन हमें मिलने नहीं देंगे प्रिये ! क्या ?
साँस भी दीवार बन, हमको हटा देगी प्रिये ! क्या ?
प्रश्न अब यह प्राण बन कर, बन गया उत्तर स्वयं यह:—
प्रेम का "क्या ?" है स्वयं "क्या ?"

जो स्वयं के ही लिए है, वह शलभ की साध मेरी,
यह तुम्हारी खोज ही तो, कर रही है खोज मेरी,
मग-प्रदर्शक तीर-सी, चुभ कर, हृदय में कह रहीं, तुम—
खोज ख़ुद की पागये क्या ?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दृग-शलभ की पलक-पाँखो! तुम प्रतीक्षा-दीप बन कर,—
जल उठो, अब तो मनालो, विरह का त्यौहार क्षण भर;
चिर अमा, जीवन-शिरा में, फिर धड़क पूछा करेगी:—
प्रात-हीना विरह-निशि क्या?

उर-जलधि मथ कर निकालूँ, चन्द्र-सा छवि-रत्न तेरा,
इन दृगों की सम्पुटी में, जो करे निशि-दिन बसेरा;
रो, सिसक, पूछा करूँगा, मैं तुम्हारी कालिमा-सा:—
चन्द्र-वदनी! प्रेम है क्या?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

करुणामयि !

करुणमयि ! कुछ करुणा करके, करुणा-कर फैलाती जाओ
मैं दिग्भ्रांत पथिक हूँ मुझको, ध्येय-पंथ बतलाती जाओ
अपने आँसू की बाढ़ों में, तिनके-सा उतराता जाता
अपनी विरह-ज्वाल में जलकर, हाय ! धूम्र बन उड़ता जाता
देवी ! सुधि के शुष्क पुलिन पर, तड़प मीन-सा रह-रह जाता
अपनी ही साँसों से सिकता-दीवारों-सा ढह-ढह जाता
मेरी अस्थिर तम-लहरों पर, कुछ ध्रुव-दीप बहाती जाओ
करुणामयि ! .....

अपनी पलकों में ही दुख के, स्वप्न-चित्र बन जड़ जाता हूँ
अपनी धुँधली आँखों में ही, काँटा बन खुद गड़ जाता हूँ
स्वयं निराशा-नाग-पाश में, क्षण-क्षण बँधता ही जाता हूँ
अपनी ही कसकों में हिचकी, बन-बन रुँधता ही जाता हूँ
आत्म-वेदना के कटु-भ्रम की, गाँठें तो सुलझाती जाओ
करुणामयि ! .....

मन-मणि सौंप हुआ मैं भिक्षुक, औ' तुम तो बन बैठीं रानी
मैं तो महाअग्नि बन भभका, पर तुम ना पिघलीं पाषाणी !
माखन-तनया ! तुम छाती पर, पत्थर-सी जमकर बैठी हो
मेरे यौवन-ऊषा-पथ पर, महानिशा बनकर लेटी हो
मेरे पथ पर फूल नहीं तो, काँटे ही बिखराती जाओ
करुणामयि ! .....

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अब तो मादक दीवाना मैं, बना प्रेम का अटल पुजारी
महाप्यास बन कर जागा हूँ, महाप्रलय-सा विप्लवकारी
मैं उस महाशलभ-सा हूँ जो, तूफ़ानी उन्माद जगाये
उड़ता जाता महाअग्नि-मय, शत सूर्य्यों के पंख लगाये
महानाश में निर्माणों के, कुछ कण तो बिखराती जाओ
करुणामयि !.....

अब तो महा विरह-पिंजरमें, बंदी शुक बन कर रहना है
जीवन-खँडहर में बन झंझा, साँय-साँय कर बस चलना है
इतना भी क्या याद रखोगी, देवी ! मेरी करुण कहानी
प्रलय-अग्नि कण-कण ने पाली, आँखों ने पाला है पानी
विषमय प्यासे जीवन को कुछ, मधु के घूँट पिलाती जाओ
करुणामयि !.....

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सौन्दर्य्य-महाज्वाला

विश्व-कुण्ड में धधक रही है, यह सौंदर्य्य रूपिणी ज्वाला
जिसे देख मैं स्वयं धधकता, बन कर एक अलक्षित ज्वाला
तरु, तृण, पल्लव, कम्पित होते, उसी ज्वाल की लपट पसारे
कलियाँ बन कर चटक रहे हैं, उसी अग्नि के ही अंगारे

तारे, चन्द्र, सूर्य्य हैं रूपक, उसी धधकती ज्वाला के ही,
सृजन, प्रलय हैं अगणित फेरे, उसी अनल की माला के ही;
मधु-ऋतु बन कर वह ज्वाला ही, होली का त्यौहार मनाती,
यौवन-मंदिर पर वह विजयी, काम-ध्वजा-सी है फहराती!

किन्हीं विद्रुमी अधरों को लख, मेरे अधर पपीहा बनते,
पल्लव बन, उन कलियों का मृदु, चुम्बन करने, हिल-हिल पड़ते!
किसी वक्ष का मृदु आलिंगन, मेरे भुज द्वय को तड़पाता,
यौवन-सागर, व्योम-पात्र में, भरने, लहरों-सा उफनाता,

यौवन मेरा राज-हंस बन, चिर-तृष्णा के पर फैलाता,
प्राणों का उच्छ्वास लपट-सा, हहर-हहर कर बढ़ता जाता!
आज चाहता, सूर्य्य-कुम्भ में, भरदूँ अपने उर-अङ्गारे,
मेरी प्यास पिघल कर फैले, व्योम-अजिर में बनकर तारे!

चन्द्र-अधर के मधु में भर दूँ, अधरों के मैं दाहक चुम्बन,
एक विश्व नव, निर्मित कर दें, मेरे तन के गतिमय कण-कण!
इस सौंदर्य्य-महाज्वाला में, अपना मैं अपनत्व जलादूँ,
विश्व-व्याप्त सौंदर्य्य-अग्नि में, प्राणों का श्रीखण्ड जलादूँ!

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सकल वासना उसी अग्नि में, जलकर शुद्ध स्वर्ण बनजाये;
अग्नि-परीक्षित सीता-सी वह, जग की वन्द्य मात बन जाये!
इसी अग्नि के वामन-पग पर, शलभ-कुसुम बन मैं गिर जाऊँ,
इसी अग्निमय महाकुण्ड में, ज्वाल-ध्वजा बन फिर फहराऊँ!

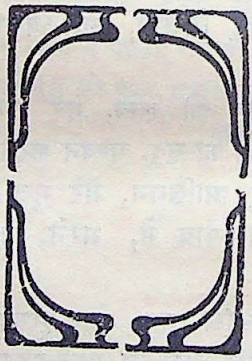

Sri Pratap Singh
Library
Srinagar.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है अनोखा प्रेम का संसार री सखि!

है अनोखा प्रेम का संसार री सखि!
मृत्यु में जीवन यहाँ है, और जीवन में, मरण सौ बार री सखि!
है अनोखा……

प्रेम की जादू भरी इस, गैल का 'अथ' है अनिश्चित,
यह लहर है जो उठी तो, बह चली तट से अपरिचित;
'अंत' इसका पहुँच-बाहर, वह क्षितिज की कोर-सा है,
द्रौपदी का चीर है वह, जो सतत बेछोर-सा है!
इस डगर में निशि-दिवा क्या! जब चले तब, होगया भिनसार री सखि
है अनोखा……

पूर्व, पश्चिम, इस डगर के, हैं हमारे ही इशारे,
हैं निराले सूर्य्य, चन्दा, और न्यारे हैं सितारे,
हम जिधर प्राची उधर, सूरज उधर, निकले जिधर हम,
हम जिधर पश्चिम उधर, चन्दा उधर हँसते जिधर हम;
ज्योति-बीजों से हमारे, तारकों के, खिल रहे गुलज़ार री सखि!
है अनोखा प्रेम का……

कौन जाने प्रेम के अन्तर-दृगों की मोहनी सखि?
बन गई जिससे अँधेरी, पूर्णिमा की चाँदनी सखि!
प्रेम-पूरित प्राण का नभ, कौन मानव नाप पाये?
जब कि यह नभ एक तारा, बन उसी में जा समाये!
प्राण की चिनगारियाँ भी बनगईं, फुलवारियाँ सुख-सार री सखि!
है अनोखा……

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

देख लो अज्ञात तम में, वह झलकती दीप-बाती,
अग्नि की वह अङ्गुली, हमको इशारे से बुलाती,
है हमारे ही हृदय की, आग, सखि! वह दीप-बाती
जो झलक कर क्षितिज-दर्पण, में हमें आगे बुलाती!
प्रश्न अब 'उस पार' का क्या? प्रेम-सागर, तो सतत मँझधार री सखि,
है अनोखा……

चन्द्र-सी तू चङ्ग प्यारी, रश्मि-रेशम-डोर हूँ मैं,
प्रेम की ध्रुव अङ्गुली तू, और उसकी पोर हूँ मैं;
अब हमारी साँस में अद्वैत का स्वर गूँजता है,
औ' दृगों की प्यालियाँ ले, स्वप्न-दल अब झूमता है;
पुतलियों में हम समाकर, बन गये हैं, ध्येय-ध्रुव-अवतार री सखि!
है अनोखा……

तुम न होगी; मैं रहूँगा, ध्यान की धूनी रमाये,
प्राण-कुटिया में सहस्त्रों, स्वप्न के दीपक जलाये;
तब विरह के आँसुओं को, मानकर सुखमय घटाएँ—
मोर बनकर नाच उट्ठेंगी, सकल तन की शिराएँ!
'ताज' लाखों ही बनेंगे, जब बहेगी, अश्रु-यमुना-धार री सखि!
है अनोखा……

योग में संयोग की साधें कभी होती नहीं हैं,
दो समानान्तर लकीरें, द्वैत को खोती नहीं हैं;
मैं विरह-असि-धार को पावन त्रिवेणी-धार करने—
चल पड़ा हूँ साध-पथ पर, मृत्यु-सीमा पार करने!
उस विरह के शून्य में, होंगे निनादित "प्रेम-जयजयकार" री सखि!
है अनोखा……

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आज 'लख' को 'अलख' करने, सान्त, "सीमाहीन" करने—
चल पड़ा हूँ मुक्ति को भी प्रेम के आधीन करने;
प्रेम की बंसी बजाकर, विरह-माखन-चोर मैं सखि !
रज-कणों में भी भरूँगा, मिलन-मीड़-मरोर री सखि !
चन्नु मेरे, "कृष्ण योगी" और 'गीता', अश्रु-अक्षर चार री सखि !
है अनोखा·····

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

क्या न गाँठ तुम खोलोगी ?

क्या न गाँठ तुम खोलोगी ?
छायामयी अँगुलियों वाली ! कब अवगुण्ठन खोलोगी ?
क्या न गाँठ तुम खोलोगी ?

(१)

सावन-मेघों-सी घिर आती, प्राणों में क्यों घनी उदासी ?
प्यास हृदय की सागर-तट पर, रही युगों से प्यासी-प्यासी
यौवन के परदे में साँसों-सी तुम कसकन ओ चिर-वासी !
गगन-भरे इन अश्रु-कणों के, घूँघट कब तक खोलोगी ?

(२)

कौन रहस्यमयी यह पीड़ा, प्राण-क्षितिज से झाँक रही है ?
उर के शून्य मरुस्थल पर क्यों, पद-चिह्नों को आँक रही है ?
हृदय-वासना, लिये आरती, अग्नि-शिखा-सी काँप रही है
प्रश्नमयी इस अग्नि-रसा से, तमसे ! कब तुम बोलोगी ?

(३)

संध्या-तारा सी एकाकी, करुणा झाँक-झाँक रह जाती
टीसें प्राणों की धुँधुआ कर, उठ-उठ, काँख-काँख रह जातीं
सकल विश्व की तरु-छायाएँ, पिघल-पिघल उर में छा जातीं
उर के अमा-मौन को कब तुम, सिसकी-स्वर पर तोलोगी ?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

(४)

वायु-विकम्पित, पल्लव-ज्वर-सा, कण-कण में मैं काँप रहा हूँ
धाँय-धाँय कर ज्वाला-मुख-सा, उर-अंतर में हाँप रहा हूँ
अश्रु-सरित-तट, शून्य चिता-सा, धधक-धधक नभ नाप रहा हूँ
ओ मृग-तृष्णा की तृष्णे! तुम, मधु-घन बन कब डोलोगी?

(५)

पी-पी जाता हूँ आँखों से, सुन्दरता के अगणित प्याले
लील-लील जाता पलकों से, यौवन के सुख-स्वप्न निराले
क्षीराम्बुधि पी डाले, पर हा! जनमे प्यास-भुजंगम काले
ओ अतृप्ति की प्याली! कब यह, सुरा-प्यास तुम ढोलोगी?

(६)

साँय-साँय कर महाशून्यता, क्रुद्ध सर्पिणी-सी बल खाती
दिल के काँटों से भी हूकें, फूट-फूट, नभ से टकरातीं
इधर चाँदनी ओठों ने पी, आँखें उधर बनीं बरसाती
यौवन-साँसों की कटु आहो! कब तक यह हिय हूलोगी?

(७)

यौवन-झञ्झा की तूफ़ानी-सी ये लम्बी-लम्बी साँसें—
उन बीजों को ला बिखरातीं, जो करते हैं पैदा गाँसें
कर में प्याला, घूँट अधर में, और गले में चुभती फाँसें
मधु-सागर की अग्नि-परी तुम! शोले कब तक रोलोगी!

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

(८)

यौवन-ज्वालामय द्विजिह्व में, मधु भी भर कर, ज़हर हुआ है
दृग से मद का बूँद गिरा जो, बस वह उठ कर लहर हुआ है
क्षण भर यौवन का इक सुख-क्षण, ब्रह्मा का दुख-प्रहर हुआ है
यौवन की मद-झँपी पलक तुम, तृष्णे! क्या अब खोलोगी?
क्या न गाँठ यह खोलोगी?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मेरी अनुराधा !

(१)

स्वयं दीप-सी जगी हुई है, युग-युग से मेरी अनुराधा
कण-कण में दीपाली-सी है, दमक रही मेरी अनुराधा
अश्रु-आर्द्र-पलकों में लिपटी, भग्न-स्वप्न की छिन्न-लता-सी
कोलाहलमय जग में बैठी, तपोभूमि की निर्जनता-सी
अपने उजड़े मधु-वन में वह, तपा अपर्णा-सी अवतारी—
विरहोच्छ्वासों के काँटों पर, तड़प रही मृदु कुसुम-कुमारी
मूक प्रतीक्षा के खँडहर में, उर के निर्जनतम प्रान्तर में—
क्षितिज-हीन दृग के अम्बर में, महाशून्यता के अन्तर में—
आँसू के एकाकी संध्या-तारक की लघु ज्योति जगाये—
स्वयं दीप-सी जगी हुई वह, युग-युग से लघु दीप जलाये

(२)

यौवन-पृष्ठों पर सहसा ही, अङ्कित हुआ प्रणय का लेखा
तमसा-सलिल-सिन्धु में जैसे, तिरती भ्रान्त किरण की रेखा
प्राणों की वह शुचितम सुरसरि, हिम-घूँघट भी खोल न पाई
अभी दूधिया बड़री अँखियाँ, अपने से भी बोल न पाई
अभी नहीं थी मुसका पाई, उर-उपवन की कुंकुम-क्यारी
बरस पड़ी हा! नियति-गगन से, शिशिर-मेघ की प्रलय-ख़ुमारी
भग्न-समाधि प्राण की तेरी, सोई धवल हिमालय बनकर
मुरझी कलियों-सी कितनी ही, अलकाएँ हैं बिखरीं उसपर
बाल-प्रणय के भस्मसात् उस, लाक्षागृह में अलख जगाये—
बैठी हिय की दग्ध भस्म को, अपने से ही वह लिपटाये

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

(३)

जग के कलुषित दृग में यौवन, संशय का घर है बन जाता
नैतिकता की वृद्ध दृष्टि में, बनता पाप, प्रणय का नाता
अडिग प्रेम की गंगा-यमुना, नहीं रोकने पर रुकती है
प्रेम-पिपासा कड़वे आँसू, पी, मधु-मीठी हो बढ़ती है
कहीं प्रेम-भी बन्दी होता, करें लाख दृग पहरेदारी!
बंधन के तहख़ानों में क्या, बन्दी प्रेम-पवन सञ्चारी?
घृणित वासना है अँधियारी, जो अँधियारे में छिप जाती
प्रेम-किरण तो तम के घूँघट, खोल, निडर होकर इठलाती
डूबी संध्या-सी पलकों में, तन्द्रिल निशि का बोझ उठाये—
रवि की अंतिम म्लान-किरण-सी, बैठी है वह आस लगाये

(४)

अनुभव करता तेरी आहों की क्षत तितली-सी कटु तड़पन-
देख रहा हूँ तेरे दृग में, डूबे कितने नभ अरु सावन-
घोर निशा के मरु-नभ में ज्यों, भ्रान्त-खगी के पर की फड़कन-
वैसे ही क्या सिहर-सिहर रह, जाते तेरे उर के कण-कण?
अधर-प्रान्त में अंतःनिसृत, शिशिर-साँस सिसकारी भरती
शून्य-वृंत-सी जीवन की कटु, घड़ियाँ सिहर-सिहर हैं उठतीं
अग्नि-परीक्षित हो तू निखरी, अग्नि-परी-सी प्रवाल-प्रतिमा
हिय-मन्दिर में आज अधिष्ठित, करता तेरी स्वर्गिक तनिमा
क्षितिज-पार हैं प्रेम-सरित-तट, विरह-निशा ने पर फैलाये
चकवा-चकई-से बिछुड़े हैं, हम दो पीड़ा-भार उठाये

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

\+ + + + + +

नवल-वधू-सी कुछ सकुचाती पुण्य-ज्योति तव धीरे-धीरे—
प्राण-सदन के बुझे दीप में, जाग रही अब धीरे-धीरे
विद्यापति के कलित काव्य की, ओ अनुभूति ललित अनुराधा!
तन्मय पीड़ा में हम इतने, हों कि हटे पीड़ा की बाधा!

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कब मिल पाये मन के मीत ?

(१)

कब मिल पाये मन के मीत ?
कब मिट पाई प्यास हृदय की ?, कब बुझ पाई आग प्रणय की ?
यौवन की कजरारी निशि की, चञ्चल-सी इस मरु की दिशि की—
देखी किसने अजर-अमर वह, स्वर्ण-धुली-सी प्रात अमिय की ?
तृषित अधर के अग्नि-क्षितिज से, चिर-परिचित उस कुसुम-क्षितिज तक-
कब पहुँचे वे पागल गीत ?
कब मिल पाये मन के मीत ?

(२)

यौवन के दो पंछी चहके, एक दूसरे में कुछ बहके
धनु-शर व्याधा के झट सरके, भाग्य-भृकुटि में सौ बल फड़के
सहसा उड़ा त्रस्त इक पंछी, गगन-विदारक क्रन्दन करके-
और दूसरा गिरा डाल से, रक्त-भरा पल्लव-सा नीरव—
क्षण में हुआ पात-सा पीत
कब मिल पाये मन के मीत ?

(३)

देवदास-पारो की गाथा, विद्यापति, पगली अनुराधा
आग-भरे सब आते, जाते आँसू भर यह तृष्णा-गाथा
कहाँ यहाँ यमुना का तट है ? कहाँ कृष्ण अरु प्यारी राधा ?
अरे! प्रवासी के पद-चिह्नों पर पलकों की लघुतम रजनी—
बिछ-बिछ कर बस जाती बीत
कब मिल पाये मन के मीत ?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

(४)

पलक, प्राण पर है गिर जाती, अंतिम बूँद, आँख भर लाती
साँस, क्षितिज से जा टकराती, पुतली, अंधकार पी जाती
दो बिछुड़े प्राणों की धड़कन, महामृत्यु-पद-चाप सुनाती
चार दृगों की कितनी प्रातें, प्रलय-निशाएँ बन-बन जातीं!
जीवन-मधु बनता है शीत
कब मिल पाये मन के मीत?

(५)

यौवन-प्रेम-कुञ्ज में जी भर, राजा-रानी कब हैं खेले?
उर में अग्नि-कुमारों के अरु दृग में लगते सावन-मेले
वही स्वर्ण की काया उड़ती, भस्म चिता बन, आहें ले-ले
इस तट जन्म प्रेम का होता, उस तट विरह-चिता हहराती
यही प्रेम की गति की रीति
कब मिल पाये मन के मीत?

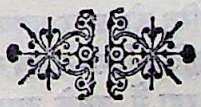

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भर-भर आते मेरे लोचन !

(१)

भर-भर आते मेरे लोचन !
इस वियोग के योग-छोह में, दूरी के सामीप्य-मोह में—
भर-भर आते मेरे लोचन !
प्रेम-हास से बुना हुआ मृदु, जग-तरु पर था नीड़ हमारा
नभ की नीली पुतली का मैं, एक चमकता था लघु तारा
रहने को थी शांति-पर्णिका, वसुधा का था हरा किनारा
और प्रिया की लघु बस्ती का, मैं ही था बस एक दुलारा
आज नियति की नैया मुझको, दूर देश है लेकर जाती
दूर हो रही दूध-भरी इस, तट की हरी-भरी-सी छाती
बहा जा रहा, जल-जल उठती, दृग में आँसू की लघु बाती
अश्रु-अक्षरों से भर आती, प्राण-प्रिया के दृग की पाती
खड़ी हुई है बाला तट पर, मुझको, देने प्रेम-बिदाई
आँखों में तो अश्रु भरे हैं, अधरों पर है मुसकी छाई
वक्षाञ्चल में आह भरी है, मुख में है आशीर्वधाई
उधर गोपिका-सी वह आकुल, मैं व्याकुल हूँ इधर कन्हाई
तट पर वह मीनाक्षी कातर, इधर लहर-सा मैं उठ, गिरता
चीर रही पतवार सरित को, इधर हृदय मेरा है चिरता
उस चिर-परिचित क्षितिज-दिशा में डूब रही वह, जीवन-तारा
इधर क्षितिजमें डूब रहा मैं, उसके दृगका प्रिय ध्रुव तारा
द्वार खुले उस कुटिया के या, उसकी मातृ-प्रेममय कारा—
द्वारों मिस कर फैला कहती, "कहाँ बहा मम दीपक न्यारा?"
तट की लहरें भागी आतीं, उठ कर, लख कर गिरती जातीं
उमड़े लहरों-से मम लोचन, भर-भर आते मेरे लोचन !

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

(२)

वह वन-बाला अरु कुटिया अब, हुई दूर, दृग में अंधियाला
इधर नाव की सुघर हथेली, पर मैं उभरा बन कर छाला
श्वेत पंख फैलाये अब भी, खग-मालाएँ हैं मँडरातीं
मानो बड़री अँखियाँ उसकी, दर्शन-आकुल हो उड़ आतीं
क्षितिज-अधर पर खिंची हुई है, नभ की गहरी नीली रेखा
क्या उस बाला के ललाट की, घनीभूत वह चिन्ता-रेखा?
जीवन-सरि पर आँक रही है, नैया मेरी भाग्य-कुरेखा
जल पर नाव, नाव पर मैं हूँ, ढुला हुआ जल-सा अनदेखा
छाई तमसा, ऊपर नभ से, टूटे आग-भरे कुछ तारे
मानो दर्द-भरे सीने को, तोड़ उड़े दिल के अंगारे
दूर क्षितिज में कुछ-कुछ हँसते, उडु के करुणा-दीपक न्यारे
ए री नैया! ले चल मुझको, उसी नीलमी शून्य-किनारे
मैं भी क्षितिज-डोर में गुँथ कर, लघु-सा तारा बन जाऊँगा
उसी कूल के नभ में चढ़ कर, मन्द-मन्द फिर मुसकाऊँगा
अपने दृग के सावन से फिर, दोनों तट एक बनाऊँगा
बरस-बरस उस हरित-तटी पर, भूलों से गान गवाऊँगा
पैंगें भर-भर उसकी सखियाँ, सावन-गीत सुनाएँगी जब
दूध-भरी वे आँखें उसकी, उफन-उफन रह जाएँगी तब
उसकी पलकों की अलकाओं में डोलूँगा मेघदूत बन
मेघदूत बन! मेघदूत बन!! भर-भर आते मेरे लोचन!

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

महानाश की ओर

(१)

मैं प्रलय-पथ का पथिक बन जा रहा, अब प्राण बोलो !
इस बिदाई की घड़ी में, आँसुओं के बाँध खोलो
में युगों का मूक साधक, सांध्य-ज्वाला-सा रहा जल
धूम्र-घन अब तक छिपाये, ही रहे प्रति रोम के तल
प्रात-सी हो उदित, डूबीं, सांध्य-सी सुनसान बन कर
डूबता मैं उर-अमा में, अश्रु-उडु-अवसान बन कर
बच-नीचे, आत्म-आहुति, दे बना मैं भस्म-ढेरी
भिक्षु था, फिर भी तुम्हारे, द्वार मैंने दी न फेरी
हास-शोधक तुम रहीं पर, मैं रहा कटु अश्रु-रोधक
तुम रहीं पाषाण-प्रतिमा, मैं रहा पाषाण-पोषक
हूँ मनुज, आखिर कहाँ तक, धैर्य्य बाँधूँ ? प्राण बोलो !
मैं प्रलय-पथ का पथिक बन जारहा, अब प्राण बोलो !

(२)

पुष्प-सी खिलती रहीं तुम, ओस-सा ढुलता रहा मैं
रूप-ज्वाले ! तुम बढ़ीं पर, वर्ति-सा जलता रहा मैं
उर-हिमंचल पर सिसकतीं, भग्न-अलकाएं हज़ारों
भ्रान्त-मरु-खग-से विकल हैं, भग्न-सपने अब हज़ारों
आस-कुंकुम-क्यारियों पर, अग्नि-अंधड़ हैं रहे झर
श्वास-वृंतों पर सिहरते, वेदना के शून्य अम्बर
तुम स्वयं अंकित हुई थीं, प्राण-पृष्ठों पर प्रणय-सी
आगई उर-तम-गुहा में, तुम, स्वयं कर्षित किरण-सी
तुम प्रथम अनुरागिनी थीं, अब चलीं वैरागिनी-सी
उफ् ! प्रणय के कुञ्ज में छिप, डँस गई तुम नागिनी-सी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आज कवि के करुण गायन गा, ज़रा मदहोश हो लो!
मैं प्रलय-पथ का पथिक बन जा रहा, अब प्राण बोलो!

(३)

प्रेम-दुर्बलता अभी तक, दिव्य संयम-सी रही है
चिर-निराशा, साधना की, चिर-सहेली-सी रही है
शून्य-सा दीपक जला मैं, अन्त-सा अब बुझ चला हूँ
मैं विरह-क्षण अँगुलियों में, था पला, अब मिट चला हूँ
मैं पपीहा प्रेम-प्यासा, तान पंखों की लगन को
नापता आया तुम्हारे, दीर्घ नयनों के गगन को
तृषित दृग से, सब क्षितिज के, छोर मैंने नाप डाले
पर तुम्हारी, स्वाति-बदली, ने न कुछ भी बूँद डाले
कौन जाने कवि-हृदय की, अग्नि-जल-घर्षण-कहानी?
मृदु नखों से प्राण-छालों की अरे! छिलती जवानी!
गाँठ-सी तुम तो खुलीं, पर इस हृदय की गाँठ खोलो!
मैं प्रलय-पथ का पथिक बन जा रहा अब, प्राण बोलो!

(४)

चल पड़ीं तुम अधर-पल्लव, में प्रलय-चुम्बन जगा कर
मैं रहा दो बूँद-प्यासा, रह गया, प्याला उठा कर
आज मेरी धुंध में यह, गगन-गरिमा लीन होगी
आज रीते दृग-चुलुक में, शून्यता तल्लीन होगी
आज अन्तिम 'लौ' लगन की, सूर्य्य का सम्मान लेगी
मृत्यु को भी आखिरी यह, आह, जीवन-दान देगी
तोड़ कर नक्षत्र कितने, पथ प्रतीक्षा में बिछाये!
स्वर्ग-गङ्गा से डगर के, रेणु-कण कितने न्हवाये!
चरण-श्रम-कण पर तुम्हारे, क्षितिज के अञ्चल डुलाये
पर कुसुम की क्रूर मुसकी! तुम रहीं मुझको रुलाये

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उफ्! जरा हँस कर प्रिये! अब, सान्त्वना के बोल बोलो!
मैं प्रलय-पथ का पथिक बन जा रहा, अब प्राण बोलो!

(५)

बज रहे नूपुर तुम्हारे, अब क्षितिज के पार आली!
दग्ध करती, लौटते पग-पद्म-जावक-ज्वाल, आली!
अधर-विद्रुम वे तुम्हारे, किस अधर के प्रात होंगे?
और मेरे अधर-चलदल, जीर्ण पीले पात होंगे!
प्रेम-सरिता संगमर्मर, के महल से क्या बही है?
रेशमी अञ्चल-तले, उडु-दीप-माला क्या जली है?
आत्म-दीपक-ज्योति भी क्या, स्वर्ण-बाती में ढली है?
अश्रु की संवेदना क्या, मदिर-प्याले में पली है?
जान ना पाया कि नारी, कौनसी भूली दिशा है?
है अधर में अरुण-ऊषा, हिय-तले गहरी निशा है
आखिरी यह रात, करुणा-दीप तो अब तुम सँजोलो!
मैं प्रलय-पथ का पथिक बन जा रहा, अब प्राण बोलो!

(६)

यों कहा जग ने कि तेरा, प्रेम में अपमान होगा
और तेरे आँसुओं का कुछ न पागल! मान होगा
कौन परखेगा हृदय को, विश्व-माया की झमक में?
कौन देखे प्रेम को इस, भोग-लिप्सा की चमक में?
पंख अपने कर ज्वलित तब, उर-पतंगा मौन होकर—
बन गया ध्रुव अग्नि-उत्तर, विश्व-ज्योतिर्स्तम्भ होकर
प्रेम ने ही तो मुझे जग का भहादानी बनाया
भिक्षु होकर ही तुम्हें, मैंने महारानी बनाया
पथ-अंधेरी अब मुझे, दिखती तुम्हारी छाँह-सी है
दिख रही उस पार उठती, वह तुम्हारी बाँह-सी है

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इन प्रलय-पाले दृगों के, अश्रु-कण अब, पोंछ तो लो !
मैं प्रलय-पथ-का पथिक बन जा रहा, अब प्राण बोलो !

(७)

देखलो उस पार मेरा, अश्रु-सागर है घहरता
हास-सा इस पार राका--रौप्य-सागर है छहरता
कोकिलें गाती रहेंगी, मधु सदा हँसता रहेगा
सिर पटक उस पार मेरा, दर्द पर रोता रहेगा
मैं चला, पर हृदय-छाले, दीप बन पथ में जलेंगे
चरण-चिह्नों पर युगों के, छोर 'लौ' बन कर जगेंगे
नाश के उन पथ-कणों में, अश्रु के शतदल खिलेंगे
इस हृदय की प्यास में शत, सूर्य्य प्याले बन ढलेंगे
भूमि-नभ के पृष्ठ पर, अंकित रहेगी यह निशानी
दो सजल दृग, दो चरण, रूठे, भ्रमित, निर्बोध, मानी
आज विष की एक प्याली, दे मुझे, मुख फेर तो लो !!
मैं प्रलय-पथ का पथिक बन जारहा, अब प्राण बोलो !

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सौंदर्यान्वेषण

चीख़ती फिर प्राण की चिर-प्यास, चातक की तृषा-सी
फिर क्षितिज-घूँघट उठा, सौंदर्य की छाया विहँसती
पुतलियों की छाँह पहने, शरद्-राका है किलकती
स्वप्न के लघु दर्पणों में, निशि, उषा-सी है झलकती
गूढ़ अन्तर-घाटियाँ, फुलवारियाँ बनकर गमकतीं
बाल-अधरों पर रमी, किसकी चरण-ध्वनि बन तृषा-सी
फिर प्रिया के चरण-चिह्नों पर प्रभा के पुष्प खिलते
पलक सीमा में, छिपे निस्सीम नभ बन स्वप्न ढलते
तम-समाहित क्षितिज, नीलम की किरण बन आज जलते
उन पगों के क्वणित नूपुर, आह में झनकार भरते
भृगु-चरण का चिह्न अङ्कित कर रही, वह कल्पना-सी
आज आकुलता गगन के पार जाने को मचलती
क्षितिज-पारी, मधु-मुखी सौंदर्य-दर्शन को तड़पती
दुग्ध-बदली-सी घुमड़ कर, आँसुओं की पाँत उड़ती
मेघ की चल-छाँह-से, उन चरण-चिह्नों पर बरसती
उस उषा की खोज में, साँसें बनीं गहरी अमा-सी
उस प्रभा के स्वप्न में धुल कर बनी, दृग-निशि. उषा-सी
वेदना की रागिनी जलती अमर विद्युत-शिखा-सी
भूमि-नभ के छोर नचते, वृत्त बन कर, रश्मि-हासी
जाग कर सौंदर्य-तृष्णा बन गयी सुख-पूर्णमासी
खोज में उसकी प्रवासी, बन हुआ मैं आत्म-वासी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हुआ क्रान्ति का भीषण गर्जन !

हुआ क्रान्ति का भीषण गर्जन !
"जाग जाग" का केहरि-गर्जन !
काँपे, नाचे पञ्चतत्व सब, सुन वह दैवी गुरु गर्जन !
हुआ क्रान्ति का भीषण गर्जन !

उथल-पुथल हो सागर भड़का, काँप-काँप कर नभ-उर तड़का,
सुप्त प्रकृति का कण-कण फड़का, प्रतिध्वनि-स्वर में गिरि से कड़का:—
"जाग जाग" का केहरि-गर्जन !
हुआ क्रान्ति का भीषण गर्जन !

काँपीं कारागृह-प्राचीरें, खनखन खनक उठीं ज़ञ्जीरें!
छमछम छमकीं असि-मञ्जीरें, रण-डङ्के से कृषक-कुटीरें-
गूँज उठीं रण-चण्डी-सी बन!
हुआ क्रान्ति का भीषण गर्जन !

अरे! प्रश्न था स्वतन्त्रता का, प्रश्न, क्षुधाकुल मानवता का,
प्रश्न, ज़ुल्म की नृशंसता का, फिर तो फहरी क्रान्ति-पताका,
बनी अमर वह क्रान्ति चिरंतन !
हुआ क्रान्ति का भीषण गर्जन !

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अति का अन्त सदा दुखमय है, बेकस आँसू ज्वालामय है,
छिपा आह में जग का क्षय है, अन्त, सत्य की अमर विजय है,
क्रान्ति, सत्य का साध-संस्करण,
हुआ क्रान्ति का भीषण गर्जन!

हल्दीघाटी की रण-वीणा, लेकर बैठी विजय-प्रवीणा,
छिड़ी अयुध की तान नवीना, अरे! जवानी नर्तन-लीना-
बनी प्रलय-अभिसार-निनर्तन!
हुआ क्रान्ति का भीषण गर्जन!

सूर्य, चन्द्र के रथ भी ठमके, सुप्त शङ्ख सागर के गमके,
भीम, भीष्म लाखों आ धमके, शोणित-कण वीरों के बमके,
उमगे "जय जय" के उच्चारण,
हुआ क्रान्ति का भीषण गर्जन!

मुण्ड-माल के अम्बारों से, रण-सिंहों की हुंकारों से,
लप-झप करती तलवारों से, मातृ-भूमि के जय-नारों से,
हुआ विजय का उद्घाटन!
हुआ क्रान्ति का भीषण गर्जन

वही प्रलय-क्षण बना सृजन-क्षण, किया सभी ने जय-अभिनन्दन
गूँजे भू, नभ, कर जय-गर्जन, किया शहीदों ने जय-गर्जन--
"टूट गये हैं अब सब बन्धन!
हुआ क्रान्ति का भीषण गर्जन!

❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀

क्रान्ति-ध्वजा ने फहरा-फहरा, कहा 'हुआ आज़ाद वतन;'
अरे! विजय ने घहरा-घहरा, कहा 'हुआ आज़ाद वतन,'
मुक्त वायु ने लहरा लहरा, कहा 'हुआ आज़ाद वतन!'

———

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चले पुजारी दीवाने !

चले पुजारी दीवाने !
माँ-मन्दिर का करने पूजन, चले पुजारी दीवाने !
हृदय-थाल पर प्राण-आरती, सजा चले वे दीवाने,
माँ-मन्दिर का करने पूजन, चले पुजारी दीवाने !
चक्षु-पात्र अङ्गारों से भर,
ताण्डव-नर्तन रग-रग में कर,
प्राणों को कर-तल पर रख कर,
झूम चले वे दीवाने !
माँ-मन्दिर का करने पूजन, चले पुजारी दीवाने !
नस-नस में बिजली की तड़कन,
उर-धड़कन है भू का कम्पन,
प्रलय-काल के मेघों से वे,
घुमड़ चले हैं दीवाने !
माँ-मन्दिर का करने पूजन, चले पुजारी दीवाने !
रोम-रोम है बड़वा-ज्वाला,
कण-कण मस्ती की मधुशाला,
मुण्ड-माल पहराने जाते,
रण-चण्डी को दीवाने !
माँ-मन्दिर का करने पूजन, चले पुजारी दीवाने !
पलकें-पानीपत का सपना,
अरे ! मृत्यु को अपना-अपना,
श्वास-श्वास में शङ्ख-नाद भर,
चले गरजते दीवाने !
माँ-मन्दिर का करने पूजन, चले पुजारी दीवाने !

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दृष्टि-दृष्टि में ताण्डव-नर्तन,
भौहों में गाण्डीव-प्रदर्शन,
गूँज रहा हर रक्त-बिन्दु यों;
"बढ़ चल, बढ़ चल दीवाने !"
माँ-मन्दिर का करने पूजन, चले पुजारी दीवाने !
उफ् ! संख्या में भेड़ों-से हैं,
दहाड़ते पर शेरों-से हैं,
खड्ग-घाट पर अपना पानी-
चले चढ़ाने दीवाने !
माँ-मन्दिर का करने पूजन, चले पुजारी दीवाने !
विजय-पताका से फहराकर,
पराधीनता-शव को लेकर,
रक्त-सरित में चले डुबोने,
आज़ादी के दीवाने !
माँ-मन्दिर का करने पूजन, चले पुजारी दीवाने !
लौह-करों की वे, दीयट पर,
दीप-शिखा तलवारों की धर,
शीश-आरती उतारने को-
चले पुजारी दीवाने !
माँ-मन्दिर का करने पूजन, चले पुजारी दीवाने !

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आज़ादी के पथ पर

चलना होगा चले चलेंगे, अङ्गारों के पथ पर ही !
चले चलेंगे रिपु की ठोकर, को हम ठोकर देकर ही !
काँटे भी गुलज़ार बनेंगे, क़दम हमारे छूकर ही,
पत्थर-पत्थर पिघल पड़ेंगे, पानी-पानी होकर ही !
जिधर हमारी मतवाली-सी, नज़र पड़ेंगी हे वीरो !
उधर देखना नाच पड़ेगी, दुनिया छूम-छनन कर ही !
असहायों को जहाँ डुबोने, छाई प्रलय-घटा होगी,
वहीं तर्जनी उठ जावेगी, गिरि गोवर्धन बनकर ही !
चलो जगत के कोलाहल में, करदें गुञ्जित रण-भेरी,
दुर्जय क़िला बनाएँ छाती, की दीवार बना कर ही !
हड्डी-हड्डी अपनी होगी, कई दधीचों-सी वीरो !
गढ़ चित्तौड़ उठेंगे लाखों, ख़ून-भरी मिट्टी पर ही !
दृढ़ जिह्वा के तरकश से हुंकार-तीर जो छूटेगा,
घुमड़ पड़ेगा आसमान में, ज्वाला-घन वह बनकर ही !
बनकर शङ्कर प्रलयङ्कर का, डिम-डिम-गर्जनमय डमरू-
श्वास-श्वास प्रति गूँज उठेगा, "डुरु-डुम डुरु-डुम-डुम" कर ही !
तन जाएँगी भौंहें अपनी, अरे ! धनुर्धर अर्जुन-सी,
झूमेंगे भुज-दण्ड हमारे, भीम-गदा-से बनकर ही !
राम-पदों ने शिला अहिल्या, करदी, किन्तु क़दम अपने-
छूकर, रज-कण उछल पड़ेंगे, लक्ष्मीबाई बनकर ही !
पुकारती है आज़ादी अब, चलो जवानो ! उठो चलो !
" नीले घोड़े के असवारो ! " चलो खड्ग-से खिंच कर ही !
मृत्यु-गोद में सोना है जब, ऐसे ही तब सोएँगे,
खड्ग-सेज पर या कि चिता पर, भीष्मपितामह बन कर ही !

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रक्त-बिन्दु प्रति अरे ! हमारा, ऐसे ब्रह्मा-सा होगा
पैदा अगणित जो कर देगा, गांधी और जवाहर ही !
जिसमें कई प्रताप, शिवाजी, ऐसे नर-मणि पैदा हों—
वैसा ही ब्रह्माण्ड बनेगा, रक्त-बिन्दु प्रति बढ़कर ही !
लगा चलें हम ऐसे नारे, आसमान जो चीर चलें,
जिनको सुन कर शहीद आवें, चिता-भस्म से उठ कर ही,
माता अपनी द्रुपद-सुता-सी रोती है अब उठो ! चलो !
फहर चलेंगे स्वतंत्रता के, झण्डे-से हम तनकर ही !

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मेरा संसार

नूतन विश्व बसाने आया !
जग को आज जगाने आया !

पहना है केसरिया बाना, प्राण बना है अब दीवाना,
कण-कण मेरा बना हुआ है, अब कुर्बानी का परवाना,
बेहोशी की पगडण्डी को, जीवन-पंथ बनाने आया !
जग को आज जगाने आया !

मस्ती की मधुशाला है अब, इन प्राणों में बसी हुई
पलकों के वीराने वन में, पागल दुनिया लसी हुई,
साक़ी बनकर मधु प्राणों का, जग को पान कराने आया !
जग को आज जगाने आया !

छक-छक कर इतनी पीली है, साधों के प्यालों की हाला,
खुद ही हाला बन कर जाता, भरने अब साधों का प्याला,
मतवाली फिरती नज़रों से, संसार फिराने मैं आया !

जग को आज जगाने आया !
मेरे पथ में लगे हुए हैं, काँटों के डेरे अनगिनती,
करते टुक आराम जहाँ हैं, यात्री साँसों के अनगिनती,
कण्टक-वृन्तों, पर बाधा के, सिद्धि-सुमन विकसाने आया !
जग को आज जगाने आया !

प्राण-पलक को बिछा-बिछा कर, अपने पथ पर चलना होगा,
समझ-समझ फाँसी को सीढ़ी, अब तो मुझको चढ़ना होगा,
ढाल बना कर अपने सिर को, अगणित शीश बचाने आया,
जग को आज जगाने आया !

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आँखों में अब नींद कहाँ है ? इनमें जागृति के पहरे हैं;
निशि-दिन, क्रान्ति-जागरण बनकर, नयन-द्वार पर ही ठहरे हैं;
चिर-निद्रा में सोकर अब तो, चिर-जागृति करने मैं आया
जग को आज जगाने आया

"इसी पार" या "उसी पार" ये, भ्रममय जग की हैं संज्ञाएँ
मेरी लहरों के जग में तो, लहरें ही अगणित नौकाएँ
लहरों पर ही अपने जग की, मैं तो नाव बहाने आया!
जग को आज जगाने आया!

समझ त्रिवेणी-संगम अपनी, ही मौजों में बह जाऊँगा,
असि की तीव्र धार को अपने, पानी ही से चमकाऊँगा;
हृदय-प्राण-के रवि-शशि से मैं, दुनिया को चमकाने आया!
जग को आज जगाने आया!

नर-कङ्कालों को मैं अपनी, प्राण-वायु से जीवन दूँगा,
राख बनाकर अपने तन को, नव जीवन जग में भर दूँगा;
आहों के तारों पर मैं तो, ताण्डव-नृत्य नचाने आया!
जग को आज जगाने आया!

उच्छ्वासों से गगन रचूँगा, तन की मिट्टी से फिर पृथ्वी,
साँसों से फिर पवन रचूँगा, रक्त-धार से जलमय पृथ्वी!
हृदय-अनल से अग्नि जलाकर, पञ्चतत्व-जग रचने आया!
जग को आज जगाने आया!

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अरे! सैकड़ों भगवानों का तूही तो भगवान सखे!

अभिलाषा की आग जलाकर, दिल में, चल रे मानव-प्राणी!
ध्येय-गगन पर दृढ़ता चमके, बनकर ध्रुव-सी अमर निशानी!
रोती आँखों से मत कहना, दुनिया को तू दुःख-कहानी;
अरे साँस के पुतले! तुझमें, नाच रही है मस्त-जवानी!

२

भरले अपनी साँसों में तू, प्रलयङ्कर आँधी तूफ़नी;
गूँजे रक्त-धमनियों में भी, विजय-शंख की गूँज गुमानी!
यौवन के कटु आँसू में हो, शोलों की अलमस्त रवानी!
चमका अपनी आँखों में तू, नङ्गी तलवारों का पानी!

३

भरले अपनी पलकों में तू, सपनों का बाज़ार सखे!
भरले अधरों में तू हँसते, फूलों का गुलज़ार सखे!
बनें ठोकरें तुझको निर्भय, फूलों का गलहार सखे!
तेरी नङ्गी छाती होवे, लोहे की दीवार सखे!

४

अरे! त्याग की होली में गर, जलकर राख सखे! हो जाये;
तेरा कण-कण भू-नभ-पृष्ठों, पर स्वर्णाक्षर ही बन जाये!
जहाँ ख़ून तेरा गिर जाये, वहीं त्रिवेणी फिर बन जाये;
आँसू तेरे पर दीवाली, न्योछावर फिर हो-हो जाये!

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

५

अरे! साधना के पथ पर तू, विष का प्याला भी पी लेना;
चढ़ फाँसी मंसूर मस्त तू, मर-मर कर भी जी ही लेना,
इस दुनिया में तू तो अपनी, दुनिया एक बसा ही लेना!
तेरी लगन-लँगोटी से तू, महलों को ललचा ही देना!

६

आज उगलने दे तू अपनी, आँखों को, बुझते अङ्गारे
आज छोड़ने दे आहों को, भीषण अंधड़ के फ़व्वारे
आज उबलने दे आँसू में, वसुन्धरा के सागर सारे
आज गरजने दे अधरों पर, महाप्रलय के भीषण नारे

(७)

तेरी मिट्टी में फ़ौलादी, भरी हुई है जान सखे!
बुद्ध मसीहा पैग़म्बर की, तुझ में ही तो आन सखे!
मानव है तू तुझमें ही तो, अतुल शक्ति-वरदान सखे!
अरे! सैकड़ों भगवानों का, तू ही तो भगवान सखे!

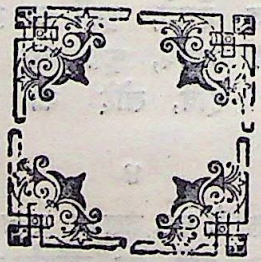

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वसन्त-गान

कोकिले! तू बोल! बोल!

पञ्च स्वर-मुक्तावली को, विश्व में तू रोल! रोल!
जागती पल्लव-पलक को, आज मधु-ऋतु खोल-खोल,
सप्त-स्वर में आज अलि-गण, गुनगुनाते डोल-डोल!
कोकिले! तू बोल! बोल!

आज पतझड़-विश्व में, मधुमास के यश का हिंडोल,
नभ-अवनि को नापता है, वायु-सा द्रुत डोल-डोल!
कोकिले! तू बोल! बोल!

विश्व-व्यापी कण्ठ-रव तव, प्रस्फुटित होकर सुडौल,
आह-तारों पर थिरकता, प्राण-अमृत घोल-घोल!
कोकिले! तू बोल! बोल!

वृक्ष-गण के पर्ण-नूपुर, और गिरि-किङ्किणि अतोल,
रुनझुनाती कूक से तव; बोल! कोकिल! बोल! बोल!
कोकिले! तू बोल! बोल!

आज उतरा नयन-नभ में, पूर्णिमा का चन्द्र गोल,
कर रहे हैं वन त्रिवेणी, प्राण के अणु-अणु किलोल;
कोकिले! तू बोल! बोल!

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्राण-मदिरा झाँकती है, हास-घूँघट खोल-खोल,
स्वप्न के कल हंस करते, नयन-मानस पर किलोल!
कोकिले! तू बोल! बोल!
पुष्प के मिस खिलखिलाकर, वृक्ष, उपवन, लोल-लोल,
दे रहे तुझको बधाई, प्राण के ही द्वार खोल!
कोकिले! तू बोल! बोल!

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जीवन का मधुमास

पुष्प बरसाता हुआ उर-देश में मधुमास आया !
आज पुतली की परिधि में, पूर्णिमा का हास छाया !
आह भी उल्लास से अब, कर रही है वाह-वाही,
रोम की प्रति वल्लरी पर, झूमता उल्लास आया !
आज सूखी धमनियों में, जोश का तूफ़ान आया,
आज अधरों की कली पर, इन्द्र-धनुषी लास छाया !
आज शिशु-सा नव्य जीवन, साँस बनकर झूलता है,
चक्षुओं की शून्यता में, यह अखिल आकाश आया !
आज उर की हूक, कोकिल-कूक बनकर गा उठी है,
आज छाती पर उभर कर, हर्ष का आभास आया!
मर गई उर की व्यथा अब, झूम मस्ती नाचती है,
प्राण के तम को निगलता, इन्दु का मृदु हास आया!
कल्पनाएँ तितलियों-सी, उड़ रहीं हर रंग में अब,
सुख-भ्रमर-सा गुनगुनाता, दुख-शिशिर-निश्वास आया!
आज आशा-पल्लवों की, विद्रुमी पलकें नचाकर
उर-विटप पर पुष्प-पग धरता हुआ मधुमास आया!
एक जग मदिरालयों का, बस गया है नयन-उर में,
भावना के खण्डहर में, इन्द्र-पुर-आवास आया!
आज जीवन को पिलाता, वह सुरा संजीवनी-सी,
झूमता उर-देश में साक़ी बना मधुमास आया !

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चन्द्रिका

अयि तुम स्निग्ध चन्द्रिका उज्ज्वल !
दूध-धुली, कर्पूर-स्रवित तुम, रौप्य-द्रवित, अयि सरिता टलमल!

छाया-जगकी आभा-अप्सरि !
हास्य-देश की बाले! सुन्दरि !
चन्द्र-पालकी पर तुम चढ़ कर—
क्षितिज-पार से कोमल-गामिनि ! आती हो मृदु मन्थर-मन्थर;
देख तुम्हें उर-गागर जग की, कर उठती है छल-छल-छल-छल !
अयि तुम स्निग्ध चन्द्रिका उज्ज्वल !

अयि मधु बाले! चन्द्र-कलश धर,
रश्मि-विनिर्मित कल करतल पर,
तारक-प्याले मधु से भरकर,
नभ-वसुधा के मरु-आँगन पर, रश्मि-नितर्त्तन करतीं सुन्दर;
खिल-खिल झूम-झूम हैं उठते, जिसले अग-जग के दस दिशि-दल!
अयि तुम स्निग्ध चन्द्रिका उज्ज्वल

दूर क्षितिज-अञ्चल में उन्मन,
सोये गिरि-शृङ्गों के तरु-वन,
अहा! वहीं से तुम तो झर-झर,—
क्षीराम्बुधि की धवल धार-सी, उमड़-उमड़ कर बहतीं सत्वर
काया के भी रज-कण तुमसे, हो उठते हैं जगमग टलमल!
अयि! तुम स्निग्ध चन्द्रिका उज्ज्वल !

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सुरसरि! नभ से भू पर गिरकर,
करतीं कण-कण अमृत-उर्वर,
बहती जाती हो तुम अविरल—
बना-बना कर तीर्थस्थल इस, मृत्यु-लोक के, अणु-अणु प्रतिपल
कलित तुम्हारी शुचिता-शुचिता, स्वर्ग बनाती, प्रति अंतस्तल!
अयि! तुम स्निग्ध चन्द्रिका उज्ज्वल!

पल्लव-पल्लव, छाया-छाया,
पर तुम चमचम-जगमग-माया!
शत-शत जुगनू की अवली-सी—
उड़तीं, मुक्त मोतिया पंखिल! झिलमिल करतीं तुम तितली-सी;
दुख की निशि-लतिका पर खिलतीं, सुख की कुन्द-कली-सी निर्मल!
अयि! तुम स्निग्ध चन्द्रिका-उज्ज्वल!

शान्ति-सुधा-प्लावित किस मानस-
से तुम मोती चुगकर सालस,
हिम के डैने फैला मधुमय—
सिद्धि-स्वर्ग की ज्ञान-हंसिनी! सोई तुष्टि-रूप-सी द्युतिमय?
सिद्ध तपस्विनि! मुक्त कान्ति लख, भूतल है हो जाता शीतल!
अयि! तुम स्निग्ध चन्द्रिका उज्ज्वल!

हिम-फुइयों की वर्षा-ऋतु तुम,
रश्मि-उर्वशी! नर्तनमयि तुम!
मृदु कुन्तल के विरल चँवर तुम—
डुला-डुला कर मण्डित करतीं, दुखमय जग के पथ-पथ निर्मम,
अपने विभा-व्यजन से हरलो, जीवन का तुम दुख-दावानल!
अयि! तुम स्निग्ध चन्द्रिका उज्ज्वल!

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गीत

कभी-कभी निस्तब्ध निशा में, होता है यह भासमान
महाशून्य यह वट विराट है, नीलम-मण्डप-सा महान्!
उडु-से जिसके प्रकाश-पल्लव, रवि-शिशि, जिसके फल विशाल
जिनसे झरता भूमि-पात्र में, जीवनमय रस किरणमान!
जिसकी दस दिशि-शाखाएँ हैं, क्षितिज-पार तक घनीभूत
गाती रहती हैं जो मर्मर, महाशान्ति का मूक गान!
महाविहग उस वट के निशि-दिवि, महाकाल के दीप-रूप
आश्रय देते भू को स्नेहल, तम-प्रकाश के पंख तान!
रवि-शशि फल ये प्रति निशि-दिन हैं, झरते-झड़ते नियम-बद्ध
होते रहते महानियम से, उडु-पल्लव सब कम्पमान!
कैसा अनुपम विराट वट यह! शांति-बीज से जो प्रसूत
महाशांति सा छाया जिसका, भू पर है विस्तृत वितान!
तपस्थली का विशाल वट यह, जिसके नीचे कहो कौन—
करुण तपस्वी करता रहता, पञ्चतत्त्वमय योग-ध्यान?

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

रन्ध्र-रन्ध्र इस भू के हैं क्यों, शांति, नियम से फिर विहीन?
शांति, नियम से विरहित हैं फिर, क्यों ये मानव-महाप्राण?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वह भिखारी

करुणा की वे चिर उपवासी, कम्पित अंधी आँखें धारे,
वृद्ध भिखारी एक नगर में, बैठा रहता सड़क किनारे,
विनत प्रकम्पित दो कर अपने, मानवता की ओर उठाये-
बैठा मूक रहा करता था, दो दाने की आस लगाये,
बार-बार वह उठा-उठा कर, पलकें करुण दृगों की अपने-
देख न सकने पर भी मानों, देख रहा था करुणा-सपने,
क्षितिज-पटी पर देख रहा था, मानों छवि उस करुणाकर की!
मानव-उर में झाँक रहा था, पाने निधि कुछ करुणा-कण की;
अपने अंधे तममय जग में, कल्पित रवि, शशि वह चमकाये;
बैठा था भवभूति दृगों में, और हृदय में बुद्ध छिपाये!
सिकता-तट पर जल-ज्वारों से, जैसे बनतीं हैं रेखाएँ,
वैसे उसके गालों पर थीं, दृग के ज्वारों की रेखाएँ!
उसके चिथड़ों के वे मानों, टूटे-टूटे तार हज़ारों-
झङ्कृत मूक स्वरों में करते, थे हा! क्रन्दन-गान हज़ारों!
नन्हें-नन्हें दो कृश बच्चे, उसके पैरों पर थे सोये;
धूलि-धूसरित मृत-से चुप वे, लाचारी में खोये-खोये!

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लघु नयनों ने उनके शैशव, में ही जग को था पढ़ डाला,
जग था उनको रहस्य का इक, तममय अक्षर काला-काला!
कर्कट-ढेर समझ कर उन पर, दृष्टि नहीं थी कोई पड़ती;
तीन धूनियाँ थीं वे जिनकी, आँच न निष्ठुर जग पर पड़ती;
एक विटप की दो गज़ छाया, ही थी, उनका स्वर्ग-बिछौना;
वसुधा-प्राणों का वह उनको, एक मिला था करुणा-कोना,
वे ठुकराये धूलि-कणों-से, निर्मम मानवता को लखकर-
क्षणिक सान्त्वना थे पाजाते, रज-कण से ही लिपट-लिपट कर!
वर्षा-शर-बौछारों से वे, खुद को नहीं बचाने पाते,
ग्रीष्म-सर्पिणी की फुङ्कारों, से वे झुलस-झुलस थे जाते!
बचने को वे खड्ग-धार सम, शीत-पवन के तीव्र चपेटे-
गुड़ीमुड़ी हो सो जाते थे, खुद को खुद में हाय! लपेटे!
उन बच्चों के पालन-पोषण, की निस्वार्थ भावना धारे,
उस बूढ़े ने ऐसे कितने, नरक-तुल्य थे वर्ष गुज़ारे?
कौन देखता उसके दृग के, झरने? आहों के फ़व्वारे?
मृत्यु-दान वह माँग रहा था, अपने कम्पित हाथ पसारे!
जन-कोलाहल, वैभव-वंशी के स्वर उसके कर्ण-पुटों से—
टकरा-टकरा कर रह जाते, लहरें जैसे मूक तटों से—
नन्हें-नन्हें वे दो बच्चे, अपने भूखे नेत्र पसारे—
देख-देख रह जाते जग का, वैभव अपने होंठ पसारे!
जन-वाहन-समुदाय लहर-सा, इधर-उधर था आता जाता;
अपने स्वार्थ-कार्य्य में रत बस, रहता मानवता का नाता!
तुतला-तुतला कर इक बच्चा, मुख में, स्वर में, करुणा भरकर—
"बाबूदी इक पैथा देदो," कहता जाता था रह-रह कर,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लेकिन जग के वज्र-घोष में, उस बच्चे के तुरही-स्वर की—
पहुँच कहाँ तक? छूले जो, गहराई मानव उर के स्तर की!
सध्या तक दो एक टकों की, हो जाती थी पेट-कमाई,
चाव चने वे करते रहते, जैसे-तैसे पेट-भराई!
उन बच्चों को बहुधा बूढ़ा, अपना भाग खिला देता था;
भूखे रह, रो-रो कर चुपके, अपनी भूख मिटा लेता था!
एक साल जब शिशिर-निशा ने, अपने सुरसा-मुख को फाड़ा,
रोये वे दो बच्चे, बरसा, जब हा! अति ही भीषण जाड़ा!
"सी-सी" करता हड्डी-हड्डी, को वह शीत पवन तड़काता;
उन चिथड़ों से लिपटे बच्चों, से रह-रह कर था टकराता!
नोच रहा था अपने पञ्जों से वह, कोमल दो मृगछौने,
हाय! प्रकृति भी थी ठुकराती, मक्खन के दो मृदुतम दोने!
रोगी, बूढ़ा उठा सम्हल कर, सुनकर उनका आकुल क्रन्दन,
बैठा अपने जर्जर कम्बल से ढँक-ढँक कर उनके लघु तन!
फिर भी शीत घुसा जाता था, असि-सा, कर 'सर-सर-सर-सर'रव
काँप रहे थे वे दो बालक, वायु-विताड़ित वे दो पल्लव!
वृद्ध भिखारी ने तब अपने-सा ही बूढ़ा कोट उतारा,
और डाल कर उन बच्चों पर, बैठा लेकर विटप-सहारा!
एक फटी धोती बस पहने, अर्ध-नग्न बूढ़ा बेचारा!
ठिठुर-ठिठुर रह जाता था तन, मृत्यु-शीत में उसका सारा!
रोगी, भूखा, बूढ़ा उसका, जर्जर तन था कम्पित सारा;
जिस पर निशि भर क्रूर शीत ने, फेरा तीक्ष्ण पवन का आरा!
जीवन की पौ फटकर फैली, प्राची के जब धूमिल नभ में,
चहल-पहल हो उठी प्रात के, शीत-स्पन्दित अखिल जगत में!
तरु से टिका हुआ वह बूढ़ा, सर्दी में रह गया अकड़ कर;
मूर्त्ति सरीखा टिका हुआ था, तरु से शव वह ढ़ा जर्जर बूढ़!

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दोनों बालक, "बाबा ! बाबा !" कहकर उसको लगे हिलाने;
वे अनबूझे 'उथो उथो,' कह, लगे ज़ोर से फिर चिल्लाने !
एक दूसरे को लख अचरज, से कुछ क्षण तक भीत मृगों-से,
स्निग्ध दूधिया मूक दृष्टि से, बातें कर फिर मूक खगों-से-
निद्रा-मग्न समझ कर उस चिर-निद्रित बाबा को वे दोनों-
चले खेलने दुग्ध-दंत की, कलियाँ चटखा कर वे दोनों।
कल-परसों की चिन्ता से वे, मुक्त, भिखारी दोनों बालक,
यह ना समझे नहीं रहा अब, उनका जग में कोई पालक।
वे ना समझे, बाबा अब क्या, देगा उनको चने चबाने ?
वे ना समझे, हाय ! पड़ेंगे, लोहे के अब चने चबाने !

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

अब भी आँसू के दो दाने, शव के सूखे गालों पर थे !
जम कर सर्दी से वे जड़-से, जड़े हुए उन गालों पर थे,
दिन की जीवन-ऊषा में अति कटुता के वे पागल आँसू !
चमक रहे थे, संध्या-तारा-से वे निश्चल कड़वे आँसू !
हाय ! वर्फ़ के लघु टुकड़े-से, करुणा के कटु कण वे दोनों
फिर उन शिशुओं की कटु स्मृति में, पिघल चले वे आँसू दोनों !!

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

किसान की आहें !

(१)

जीवित-सा कंकाल बना इस, दानव जग में मैं क्यों आया ?
दग्ध-हृदय पर भी विधि ने क्यों, कर दी तप्त आह की छाया !
निष्ठुर जग ने श्वान समझ कर, मुझको जगह-जगह ठुकराया,
इन दो आँखों में भी विधि ने, आँसू का संसार बसाया !
मैंने ही तो शुष्क भूमि को, रक्त-अश्रु से सींच हँसाया,
फिर भी अत्याचारी जग ने, दाने-दाने को तरसाया !
मृत्यु-गोद में भी हे ईश्वर ! मैंने नहीं ठिकाना पाया,
ए करील ! करुणा कर, तू ही, कर देना काँटों की छाया !

(२)

तीक्ष्ण छुरी-सी शिशिर-वायु को, मैंने ग्रीवा-हार बनाया,
कण्टक-कुटिया को ही मैंने, पुष्प-महल-सा है अपनाया !
व्यजन समझ कर ग्रीष्म-लपट को, मैंने अपना तन झुलसाया,
अश्रु-दीप से मेरे जग ने, दीवाली-त्यौहार मनाया !
पतझड़ बन कर मैंने जग में, मधु-श्री का शृंगार सजाया,
दुःख-नीलिमा ने ही मेरी, पीत भूमि को हरित बनाया,
शुष्क उदर में क्षुधा-अग्नि ने, फिर भी हाहाकार मचाया !
ए करील ! करुणा कर तू ही, कर देना काँटों की छाया !

(३)

मोती-से धानों ने मेरे, आँसू का ही पानी पाया,
घोर-घटा बन स्वेद-कणों ने, जीवन जीवनमय बरसाया !
अस्थि-पुंज से मेरे ही तो, धनिकों ने प्रासाद बनाया,
चर्म-चीर-ध्वज मेरा बन कर, वैभव, भू-नभ पर फहराया !

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मेरे हल ने भू से कितनी, जनक-सुताओं को प्रकटाया!
मेरे चिथड़ों के तारों पर, फिर भी हिलगी जर्जर काया!
रोम-रोम में मेरे शत-शत, रौरव ने ही आश्रय पाया!
ए करील! करुणा कर, तू ही, कर देना काँटों की छाया!

(४)

मेरे हल ने धूलि-कणों पर, नन्दन वन को है उपजाया,
मेरे धन पर बैठी, पर हा! विषधर जग की लोलुप छाया!
भू, के नरक-पृष्ठ पर हल ने, स्वर्गों का है नाम लिखाया,
बुद्ध, कृष्ण औ' राम-राज्य का, हल ने ही अवतार कराया!
कला और विज्ञान आदि को, मेरे हल ने है प्रकटाया,
ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि का, मैं बन प्रतिनिधि जग में आया!
जग ने मुझसे जीवन पाया, पर मैंने तो मरना पाया,
ए करील! करुणा कर, तू ही, कर देना काँटों की छाया!

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ग़रीबों की दुनिया

दुनिया! ज़रा ग़रीबों की तू, सुनले आँसू भरी कहानी!
जिनकी इन्सानों में गिनती, कभी नहीं जाती है मानी!
भूखे हैं जो, पीड़ित हैं जो, साँस नहीं ले सकते हैं जो,
टुकड़े खाकर, ठोकर खाकर, कुत्तों-से हा! पलते हैं जो!
पैरों से जो कुचले जाते, हैं जो कीड़ों से भी बदतर,
जूते खाकर भूख मिटाते, प्यास मिटाते आँसू पीकर!
मुट्ठी भर हड्डी के पुतले, आह उगलनेवाले हैं जो,
आसमान ज्वाला के क्षण-क्षण, हाय! निगलनेवाले हैं जो!
लगे ज़बानों पर हैं जिनकी, सख़्त बेकसी के ही ताले;
डसते अत्याचारों के हैं, नाग जिन्हें अति काले-काले!
जिनकी रक्त-नदी पर दौलत, खेती अमन-चैन की नैया,
बिछी हुई है जिनकी छाती, पर तीखे तीरों की शैय्या!
नाकों चने चबाते रहते, ये अंगारे चुगनेवाले,
लक्ष्मी के ही सुरसा-मुख के, बने हुए असहाय निवाले!
इनके ही निर्दोष ख़ून से, चढ़ता है खड्गों पर पानी,
इनकी चमड़ी के रेशों से, बनते रेशम-पट लासानी!
क्लान्त प्राण इन बेचारों के, झुर्री-झुर्री बन कर लटके;
इन्हीं ग़रीबों की मिट्टी से, बनते तोंदों के हैं मटके!
ज्वालामुखी चबानेवाले, पर "उफ़्" कभी नहीं कर सकते,
इनकी धँसी हुई आँखों को, सागर कभी नहीं भर सकते!
विवश पेट है करता रहता, अपना मस्तक जिन्हें झुकाने,
मजबूरन पशु जिन्हें बनाते, केवल मुट्ठी भर ही दाने!
ये हलाल के बकरे तो "मैं" तक भी कभी नहीं कर सकते,
त्यागी मूक दधीच-वृन्द ये चूँ तक कभी नहीं कर सकते!

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मेरे हल ने भू से कितनी, जनक-सुताओं को प्रकटाया!
मेरे चिथड़ों के तारों पर, फिर भी हिलगी जर्जर काया!
रोम-रोम में मेरे शत-शत, रौरव ने ही आश्रय पाया!
ए करील! करुणा कर, तू ही, कर देना काँटों की छाया!

(४)

मेरे हल ने धूलि-कणों पर, नन्दन वन को है उपजाया,
मेरे धन पर बैठी, पर हा! विषधर जग की लोलुप छाया!
भू, के नरक-पृष्ठ पर हल ने, स्वर्गों का है नाम लिखाया,
बुद्ध, कृष्ण औ' राम-राज्य का, हल ने ही अवतार कराया!
कला और विज्ञान आदि को, मेरे हल ने है प्रकटाया,
ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि का, मैं बन प्रतिनिधि जग में आया!
जग ने मुझसे जीवन पाया, पर मैंने तो मरना पाया,
ए करील! करुणा कर, तू ही, कर देना काँटों की छाया!

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ग़रीबों की दुनिया

दुनिया! ज़रा ग़रीबों की तू, सुनले आँसू भरी कहानी!
जिनकी इन्सानों में गिनती, कभी नहीं जाती है मानी!
भूखे हैं जो, पीड़ित हैं जो, साँस नहीं ले सकते हैं जो,
टुकड़े खाकर, ठोकर खाकर, कुत्तों-से हा! पलते हैं जो!
पैरों से जो कुचले जाते, हैं जो कीड़ों से भी बदतर,
जूते खाकर भूख मिटाते, प्यास मिटाते आँसू पीकर!
मुट्ठी भर हड्डी के पुतले, आह उगलनेवाले हैं जो,
आसमान ज्वाला के क्षण-क्षण, हाय! निगलनेवाले हैं जो!
लगे ज़बानों पर हैं जिनकी, सख़्त बेकसी के ही ताले;
डसते अत्याचारों के हैं, नाग जिन्हें अति काले-काले!
जिनकी रक्त-नदी पर दौलत, खेती अमन-चैन की नैया,
बिछी हुई है जिनकी छाती, पर तीखे तीरों की शैय्या!
नाकों चने चबाते रहते, ये अंगारे चुगनेवाले,
लक्ष्मी के ही सुरसा-मुख के, बने हुए असहाय निवाले!
इनके ही निर्दोष ख़ून से, चढ़ता है खड्गों पर पानी,
इनकी चमड़ी के रेशों से, बनते रेशम-पट लासानी!
क्लान्त प्राण इन बेचारों के, झुर्री-झुर्री बन कर लटके;
इन्हीं ग़रीबों की मिट्टी से, बनते तोंदों के हैं मटके!
ज्वालामुखी चबानेवाले, पर "उफ़्" कभी नहीं कर सकते,
इनकी धँसी हुई आँखों को, सागर कभी नहीं भर सकते!
विवश पेट है करता रहता, अपना मस्तक जिन्हें झुकाने,
मजबूरन पशु जिन्हें बनाते, केवल मुट्ठी भर ही दाने!
ये हलाल के बकरे तो "मैं" तक भी कभी नहीं कर सकते,
त्यागी मूक दधीच-वृन्द ये चूँ तक कभी नहीं कर सकते!

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दौलत के शैतान! अरे तू! थोथे मद में डूबा इतना!
छिपे गाँधियों को इन, पापी! कभी कहा है तूने अपना?
कह किस महापुरुष से कम हैं, ये ठुकराये जाने वाले?
कह किस भीष्म, बुद्ध से कम हैं, निर्धन ये कहलाने वाले?
इन्हीं सुदामाओं को तूने, समझा पैरों की है जूती,
इतना गर्क़ नशे में है तू, चाट-चाट चाँदी की जूती!
घूम रही है बड़े मजे में, फिर भी पृथ्वी अत्याचारी,
दुनिया क्या है? अब मैं समझा, नरकों का है मेला भारी!

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कवि और वेश्या

उस विवाहोत्सव-निशा में, कवि गया मेहमान बनकर,
कौन तू उतरी हृदय में, तब स्वयं मेहमान बनकर ?
बिज्जु के आलोक-गुम्फित, कृत्रिम किरणों से विनिर्मित-
रश्मि-मण्डप था सुसज्जित, सुन्दरी ! तब तू अकल्पित-
स्थान से निकली लचकती, चमचमाती रौप्य-असि-सी,
श्वास-कम्पित, संगमर्मर की कलामय मूर्ति ही सी !
कौन तू नूपुर-मुखर हो, नृत्यमय हो गीतमय हो-
कूक उट्ठी कोकिला-सी, बीन-स्वर की मीड़-सी हो ?
दर्शकों की पुतलियों को, अचल पुतली-सी बनाती !
कल कटाक्षों से हृदय की, भाव-कलिकाएँ पिरोती,
काव्य-अम्बुधि की तरंगों-सी उभरती सुन्दरी तू !
इस अखिल ब्रह्माण्ड-स्वर-मधु, की विमंथित माधुरी तू !
कौन थी ? पूर्णेन्दु थी या स्वर्ग की थी उर्वशी तू ?
धँस पड़ी जो कवि-हृदय में, तीर थी या पीर थी तू ?

(२)

स्तब्ध-सा कवि जग उठा तब, प्रेम-उर की खोल आँखें,
रूप-ज्वाला चूमने तब, उड़ चलीं उर-शलभ-पाँखें !
दृष्टि बन कर घुल गई थी, तू स्वयं उसके दृगों में,
आह बन कर सो गया कवि, नूपुरों के हास्य-रव में !
तू स्वयं थी स्थूल मांसल, रूप की साकार माया,
यह जगत तो देखता, तेरी कुसुम-सी बाह्य काया !
सुन्दरी ! तू इन्दु-किरणों, की स्फटिक-सी तीलियों में,
बन्द, इक सौन्दर्य-विहगी-सी दिखी कवि-पुतलियों में

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वाष्प-सी अति सूक्ष्म हो, छाई हृदय-सौन्दर्य-सरि में,
मेघ-वाले ! रूप-वर्षा, कर घुली कवि-नयन-नभ में,
कवि-दृगों में तू खिला, मानों कमल-वन बस गई थी,
कवि-हृदय की दूज में, सौंदर्य्य-राका भर गई थी !

(३)

होश जब कवि को हुआ, कर्णेन्द्रियों ने तब सुना यह,
"हाय! वेश्या ! नर्तकी यह !! पाप ही की मूर्ति है यह!
रौप्य-टुकड़ों के लिये, नीलाम पर ही यह चढ़ी है,
रूप की वल्मीक में यह, सर्पिणी विधि ने गढ़ी है,
वासना के ईंधनों पर, लपलपाती ज्वाल यह है
चमचमाती विष-बुझी, मांसल कटारी काल यह है"
सत्यमय सौंदर्य ने पर, कवि-हृदय में झट कहा यह:-
"झूठ" यह अभियोग रे कवि !, झूठ तूने है सुना यह
बेबसी है, भूख है यह, आह की भी हाय यह है
सुन! स्व-भक्षी यंत्रणामय, ज्वाल भीषण काय यह है
वासना-असि से टपकता, रक्त-रञ्जित तत्त्व यह है
विश्व-अत्याचार-निर्मित, उफ्! मिटा नारीत्व यह है"

(४)

मेघ-सा करुणार्द्र हो, सौंदर्य्य-रवि-कर से लिपट कर-
सत्य-कर्पित स्नेह-सुर-धनु, बन गया कवि-हृदय-अम्बर
खुल गये सौंदर्य्य-लोचन, दिख पड़ी शुचिता पवित्रा
प्रेम के उसपार वेश्या, दिख पड़ी अति सच्चरित्रा
क्रूरता, संकीर्णता, अन्यायमय अभिशाप ही की
रूढ़ि, गुरुडम, भोग-लिप्सा, भीरुता के पाप ही की
धर्म, पाखण्डी कुपंथों, आदि की ज़ंजीर से हा !
बद्ध है यह लाश किसकी ? विद्ध शत-शत तीर से हा !

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लाश ? ठुकराई बहिष्कृत, हाय ! अबला की यही है,
लोग वेश्या कह रहे, निर्दोष अबला यह वही है !
देख सामाजिक जगत् ! यह पाप जो तूने गढ़ा है,
और फिर वह दोष इस, अबला निरीहा पर मढ़ा है !

(५)

मूक मुरली-सा बना कवि, मूक करुणा-सा स्वरित था,
सत्य औ' सौन्दर्य्य पाकर, वह शिवं की खोज में था !
सोचता था पूज्य वेश्या, जो कि हीरे-सी सुसुन्दर,
धूलि-कण-सी चरण-ताड़ित, हो पड़ी जग-पग-कुपथ पर !
ईश! यह सुन्दर कुसुम क्या, कण्टकों के योग्य ही है ?
हाय ! यह लज्जा कहीं निर्लज्जता के योग्य ही है ?
वासनामय दुष्ट मानव ! बन गया हैवान है तू,
बन गया नारीत्व-भक्षक, धिक् ! वृथा अभिमान है तू ?
देख वेश्या आरसी है, पाप है प्रतिबिम्ब तेरा,
आरसी निर्दोष है पर, दोषमय है बिम्ब तेरा !
आज नारी-स्वर्ग में तो, नरक तूने बो दिया है,
फिर उसी में गर्क़ हो, मनुष्यत्व तूने खो दिया है !

(६)

वह त्रिवेणी-धार वेश्या, दीप, कवि-दृग वह चले थे,
वासना-वट पर रसीले, प्रेम के फल पक चले थे !
प्रेम के औदार्य से रागी विरागी बन गया कवि,
"दोष भी सौन्दर्य है" "फिर दोष किसका"? कह उठा कवि !
नियति दुर्बलता, विकारों, की अमा मानव-हृदय है,
सद्गुणों के चन्द्र, तारक, का उसी में पर, उदय है !
घृणित वेश्या का हृदय शुचि, पार-दर्शक-सा दिखा फिर,
घृणित मानव-दोष, क्रमशः, क्षम्य बालक-सा दिखा फिर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सीखली सौंदर्य-भाषा, प्रेम-उडुगन टिमटिमाये,
वेदनामय शब्द-पंछी, गीत बन यह चहचहाये—
"सौन्दर्य-शाला के बने, जो प्रेममय विद्यार्थी हैं,
एक क्षण में ज्ञान-रथ के, बन गये वे सारथी हैं !

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भारत का भग्न-भवन

रे अतीत के कनक-विहार! भू को तू क्या रहा निहार?
तेरी रग-रग में साकार, सोये गौरव के संसार!
मृत्यु-गोद पर अय तुम लेटे, टूटे पाहन के कंकाल!
क्रूर काल की शूली पर तुम, लटके स्वर्ग-भाग्य के भाल!
अयि समाधि! तव भग्न-गोद में, थे वे स्वर्णिल युग आबाद,
दीवारों से झाँक रही है, अब भी वह गरिमा की याद!
कभी स्वर्ग से अपना शाश्वत, करता रहता था श्रृङ्गार,
दीवारों पर रंग चढ़ाती, चाँद-रात थी रंग उभार!
स्वर्णिल भू का वह विस्तार, था तव चरणों पर बलिहार,
तेरे प्राङ्गण पर तो आज, होता भूतों का अभिसार!
पाहन का कङ्काल जीर्ण यह, लालों में था अति वर लाल,
पर परिवर्तन-डाकू-दल ने, लूट किया इसको कंगाल!
अरे! गोद में देखा तूने, प्रणयी अधरों का आलिङ्गन,
चुम्बन मिस लुट जाता था बस, प्रेम-राज्य का ही सिंहासन!
हाय! आज कितने अनगिनती, कङ्कालों के शब्दागार-
लिखते रज मिस उड़ नभ-पृष्ठों, पर 'परिवर्तनमय संसार'!

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अरे! शून्य की चौखट पर तू, सदियों की टूटी तसवीर!
विम्बित परिवर्तन-दर्पण में, रक्त-अश्रु की अय तसवीर!
उच्छ्वासों की मौन समीरण जब दीवारों से टकराती!
गौरव-गायन की प्रतिध्वनि है, तेरे कण-कण से चिल्लाती!
दीवारें ये अब भी देखो, सिर ऊँचा कर हैं बतलातीं,
कभी हमारे मस्तक को भी, नभ-बाला थी हृदय लगाती!
सह न सका ए भग्न-भवन! तू, क्रूर समय का दुःसह भार,
इससे ही दीवारें तेरी, फट-फट कर बन गईं दरार!
तव गर्वीले मस्तक पर भी, परिवर्तन का हुआ प्रहार,
भू-शायी तव गगन विचुम्बी! तेरा हुआ महा विस्तार!
करुण पतन तव देख-देख कर, व्याकुल वायु सिसकती जाती,
रौप्य-अश्रु की तुझ पर झड़ियाँ, दूध-पुती निशि है बरसाती!
अहह! हृदय के गीले टुकड़े, रजनी-बाला, बरसा जाती,
अरे! शिशिर-ऋतु तेरे शव पर, आहें बनकर है सो जाती!
आसमान ने तुझ पर कितने जलधर-हृदयों को रो डाला
कितनी काली करतूतों का, निशि ने तुझ पर अञ्चल डाला!
इस पाषाण-हृदय में बसती, ज्वालामुखियों की ही बस्ती,
छिपी हुई है धूलि-राशि में, इसकी इतिहासों की हस्ती!
सदियों के अय वृद्ध खण्डहर! परिवर्तन के क्रूर बवण्डर-
करते तव वीरान हृदय पर, ताण्डव-नर्तन, हा! प्रलयङ्कर!
पाहन की अय वीणा! तुझ पर, कम्पित कितने करुणोद्गार!
वायु-अँगुलियाँ अब भी तुझ पर, करतीं दूरागत झङ्कार!
दीवारों मिस कर पसार तू, करता है क्या हाहाकार?
मूक रुदन कर वन में कहता 'कहाँ गया मेरा संसार'?
जंगल में तुम बसे हुए हे! बीती संस्कृतियों के जंगल!
परिवर्तन का अर्थ बताते, 'आबादी यानी है जंगल'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हैं ये टूटी दीवारें या, विषमय युग की परिभाषाएँ—
आँक रही हैं जो सदियों से, क्रूर पतन की अभिलाषाएँ!
इतिहासों की प्रतिमावत्-सी, टूटी-सी पाषाण-निशानी!
तेरी मूक कहानी पढ़कर, हो जाता दिल पानी-पानी!
प्रकृति-भाल पर भाग्य-रेख तू, विश्व-नियति की खिंची हुई है,
क्या परिवर्तन के नियमों के सञ्चालन में लगी हुई है?
क्रूर काल की अय भ्रू-भङ्गी! परिवर्तन के पद-आघात!
काल-तूलिका से तुम चित्रित, स्वर्ग-नरक के जर्जर गात!
गगन-विचुम्बित तेरा मस्तक, भू पर है हा! लुण्ठित कैसा!
अधः पतन, संहार, सृजन का, होना देखो खाका ऐसा!
अखिल विश्व पर विस्तृत नभ-सी, छाई तेरी गत गरिमा थी,
अरे! हिमाचल-तुङ्ग-शिखा भी, कभी नापती वह महिमा थी!
राम, कृष्ण, सिय, बुद्ध देव तो, तेरी रज से ही उभरे थे,
कालिदास से विश्व-श्रेष्ठ कवि, तेरी गोदी में विहरे थे!
विश्व-सभ्यता-गर्भक्षेत्र तुम!, सकल ज्ञान के गर्भ-विधायक!
दिव्य कलाओं के थे तुम तो, सदियों से सच्चे परिचायक!
प्रस्तर-प्रतिमा! तुझ पर बिखरे, काल-विटप के स्वर्णिल फूल,
जिनके सौरभ से ही अब भी, विश्व-हृदय है जाता फूल!
देख तुम्हें अय पाहन-टुकड़ो! दिल हो जाता टुकड़े-टुकड़े
छिपे हुए हैं कितने तुम में, अनगिनती रत्नों के टुकड़े!
पत्थर की यह राशि नहीं है, भारत-भग्न-भाल के टुकड़े!
टूक टूक हो नृशंसता से, बिखरे करुणा के ये दुखड़े!
दुख-सुख औ' 'उत्थान,-पतन की, है यह अति ही दिव्य निशानी,
भग्न-हृदय! तू पिये हुए है, दुख-सुख का ज्वालामय पानी!
इसके गर्भ-स्थल में कितने, आँसू-सागर हैं हा! लिपटे?
अरे! इसी ने तो कितने ही, इतिहासों के पन्ने पलटे!

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

परिवर्तन के भग्न-चित्र अय! नियति-विश्व की करुण कहानी!
जग-गुरु-भारत-दिव्य-भवन की, करुणा मय ए भग्न-निशानी!

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ताजमहल

प्रेम-अश्रु का दिव्य बीज जो, गिरा गई थी मृत मुमताज–
शाही विरह-भूमि पर विकसा, कल्पवृक्ष-सा बन वह ताज!
प्रेम-अवनि पर लगी हुई तू, चिर वियोग-संयोग समाधि!
सोई तू अङ्गारों पर अय! दो नयनों की प्रेम-समाधि!
जलती तेरी रग-रग में है, अमर साधना-दीवाली
तथा साथ ही दो प्राणों की, मिलन-ईद तू मतवाली!
खिंची हुई है तुझ पर जो दो, प्राणों की रोती तसवीर–
अरे! उसे ही देख रहा क्या, झाँक-झाँक यमुना के तीर?
छाया-पृष्ठों पर तव यमुना, लहरों की ही भाषा में,
विरह-व्यंजना लिखती फेनिल, आँसू की परिभाषा में!
प्रेयसि के आलिङ्गन-हित जो, कर पसारता था सम्राट्,
वही भावना, वही मूर्ति क्या, मीनारों सी बनी विराट्?
प्रेयसि-समाधि पर वह अपनी, नयन-दीप ले शाहंशाह–
प्राणों का कर्पूर जलाता, रहता था घण्टों वह आह!
उस सम्राट् वियोगी के दो, दर्शन-प्यासे लघु तारक,
तुझमें ही तो जड़े हुए हैं, प्रिय की छवि के आराधक!
अरे! दूधिया निशि में दिखती, है यों तेरी प्रति मीनार,
क्षीराम्बुधि में विधुर हंस ज्यों, करता क्रन्दन चञ्चु पसार!
झाँक-झाँक जातीं द्वारों पर, अमर प्रतीक्षामय रातें,
कहती वायु सिसककर तुझसे, नित विरही उर की बातें!
यमुना-जल पर जलनेवाली, प्रेम-लपट तू उजियारी,
परिवर्तन-आँधी में जलती, अमर आरती तू न्यारी!
रजत रेत के कण-कण में है, लिपटा तेरा विगत सुहाग!
यमुना-जल-तरंग पर रोता, वह अतीत का अचल विहाग!

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जड़े हुए अय! अवनि-पृष्ठ पर, अमर प्रेम के मृदु अक्षर!
अवगुण्ठन में तेरे सोये, युग-युग के इतिहास अमर!
उठकर नभ तक तव मीनारें, देख रहीं किसको उस पार?
बने प्रतीक्षा; यमुना-तट पर, किसको अपलक रहे निहार?
पीट-पीट तट से सिर यमुना, रो-रो कहती, 'हा! मुमताज!'
अरे कलामय उर के दर्पण! तुझ में बिम्बित है मुमताज!
शाही नयन-गगन में थी जो, वह मुमताज चाँद उज्ज्वल,
उसकी रूप-चाँदनी का है, प्रतिमावत् तू मुख निर्मल!
संगमर्मर के दिव्य ताज तुम! हिम-पर्वत के लघु आकार!
रोम-रोम से फूट रहीं तव, धवल प्रेम की सुरसरि-धार!
करतल पर नित प्रकृति-देवि रख, अमर आरती नव-सुन्दर-
विश्व-प्रेम-मन्दिर में अविरल, करती रहे सदा सुखकर!

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रक्त-पथ-पंथी जगत का, शान्ति हो, गलहार कैसे ?

(१)

रक्त-पथ-पंथी जगत का, शान्ति हो, गलहार कैसे ?
काव्य-कुञ्जों में सजे फिर, हास-मधु-शृंगार कैसे ?
दृश्य जग का बिम्ब लेने, मैं बना आकाश-दर्पण,
ठोकरें गिनने जगत की, बन गया पथ-धूलि का कण !
इस जगत के प्राण-नभ में, भावना-ध्रुव बन जला मैं,
प्राण में जग-प्राण भरकर, विश्व के पथ पर चला मैं !
साँस बनकर जब घुला मैं, विश्व के स्पन्दित उरों में,
हाय ! तब मैं बिंध गया, उच्छ्वास के तीखे शरों में !
आह के बाज़ार में हो, हास्य का व्यापार कैसे ?
रक्त-पथ-पंथी जगत का, शान्ति हो, गलहार कैसे ?

(२)

द्वारिका में दृष्टि की, दीखे सुदामा-गण हज़ारों !
मृत्तिका-कङ्काल, जीवित, क़ब्र से वे थे हज़ारों !

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वे क्षुधा औ' अश्रु के थे, करुण-रस-अवतार मानों;
अस्थि-पट पर थे खचित, पीताभ चर्माकार मानों!
चक्षु-राका में लहरता, दुख-अमा का सिन्धु मानों;
मानवी दानव रचित वे, घोर रौरव-रूप, मानों!
विश्व-पुञ्जीभूत करुणा, हाय! चिथड़ों में लपेटे;
मृत्यु के भीषण कगारे, पर खड़े जीवन समेटे!
शान्ति-सुन्दरि और कवि के नयन हों फिर चार कैसे?
रक्त-पथ-पंथी जगत का, शान्ति हो, गलहार कैसे?

(३)

शून्य की यह मूक भाषा, भी करुण स्वर में क्वणित है,
रन्ध्र प्रति इस भूमि का भी, जोगिया-स्वर में ध्वनित है!
किंगिरी-सी वायु भी है, भर रही सिसकारियाँ क्यों?
बन गई कण्टक-विपिन इस, विश्व की गुल-क्यारियाँ क्यों?
आज मानवता बनी, भू-भार, पशुता-रूप बन कर;
प्यास अपनी वह बुझाने, डूबती खुद कूप बनकर!
प्यास का साम्राज्य मुख, असि-आरसी में देखता है,
काल को भी ग्रास के भ्रम, भूल से वह लीलता है!
जब विषैली प्यास व्यापी, फिर सुधा-सत्कार कैसे?
रक्त-पथ-पंथी जगत का, शान्ति हो, गलहार कैसे?

(४)

सभ्यता के सप्त नभ में, एक जब जग ने भरा डग,
विश्व-मग में दूसरा, उसने अहम का फिर धरा पग!
लोभ-लोभी विश्व-वामन का, न फिर भी जी भरा क्यों?
तीसरा पग तब स्वयं की, पीठ पर गिरि-सा धरा क्यों?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हिंस्र जग ज्वालामुखी बन, क्षार खुद में हो गया है;
दुष्ट मानवता-महल, भूकम्प बनकर ढह गया है!
सृष्टि-स्रष्टा क्रूर मानव, फिर प्रलय भी बन गया है!
रक्त का संचार कर फिर, रक्त-नद में बह गया है!
आज जीवन-साँस में यह, सर्प की फुंकार कैसे?
रक्त-पथ-पंथी जगत का, शान्ति हो, गलहार कैसे?

(५)

सत्य-पथ पर खे रहा नभ, चन्द्र, रवि की रश्मि-नौका,
जग-जलधि में भ्रष्ट-पथ क्यों, मानवों की क्षुद्र नौका?
खाद्य-तृष्णा निर्बलों को, खाद्य के भ्रम खा रही है;
मानवों की शान्ति को औ' सद्गुणों को खा रही है!
श्वेत गंगा, श्याम यमुना, का पिता है श्वेत हिम-गिरि,
वर्ण-द्रोही पर बना क्यों, मानवी उर-श्वेत हिम-गिरि?
आज महलों औ' कुटीरों, में छिड़ा कुरुक्षेत्र है क्यों?
खड्ग-भ्रू के स्पन्दनों में, नाचता रण-क्षेत्र है क्यों?
आज नादिरशाह में हो, बुद्ध का अवतार कैसे?
रक्त-पथ-पंथी जगत का, शान्ति हो, गलहार कैसे?

(६)

विश्व के निर्माण में गति, ताप, जल का हाथ ही है;
और परिवर्तन हमेशा से, समय के साथ ही है!
अश्रु-जल औ' आह का जब, ताप गतिमय व्याप्त होता-
हाँ तभी दैवत्व का नैतिक जगत निर्माण होता!
झाँक मानव! भूत के वातायनों में झाँक तो ले!
विश्व-ऊषा की सुनहली, शान्ति-छवि वह आँक तो ले!

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सभ्य पशुता छोड़कर, सात्विक मनुजता देख तो ले !
तू हृदय के बुद्ध, गांधी औ' मसीहा देख तो ले !
वरन् तेरा नरक होगा स्वर्ग का संसार कैसे ?
खोल रे! कवि! बन्द जग के, हाय ! करुणा-द्वार कैसे ?
रक्त-पथ-पंथी जगत का, शान्ति हो, गलहार कैसे ?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हास्य या रुदन ?

(१)

स्वप्न-सा है हास्य रे कवि ! पर रुदन भी आज दुस्तर !
बाल्य-जीवन-वृन्त पर तू, खिल कली-सा मस्त झूमा,
रश्मि-यौवन-वल्लरी ने, फिर लिपट सस्नेह चूमा,
फिर पलक-दल खोल, तेरे, दृग-कुसुम ने दृष्टि फेरी,
बन मलय कृत उर्वशी, नाची सुरभि-मय साँस तेरी !
कवि-कुसुम ! पर जग-प्रभञ्जन ने तुझे भी नोच डाला,
और आशा-पँखुरियों को, धूलि-कण-सा रौंद डाला !
वह सुरभिमय साँस तेरी, उड़ गई बस आह बनकर !
स्वप्न-सा है हास्य रे कवि ! पर रुदन भी आज दुस्तर !

(२)

क्रूर जीवन से सहा भी, ना गया वह मधुर मधु-क्षण,
दुष्ट यौवन बन गया, दुर्भाग्य का ताण्डव-निनर्तन;
हे ! नियति के चक्र ! तूने, एक क्षण में पीस डाला,
काल-करि ने लहलहाती-सी, लता को तोड़ डाला !
क्रूर जीवन-क्षेत्र तू तो, मृत्यु-प्रद ज्वालामुखी है;
प्राण-यमुना में कला की, कालिया तू विषमुखी है।
राख, भव-चिन्ता-चिता ने, कर दिया तुझको जलाकर !
स्वप्न-सा है हास्य रे कवि ! पर रुदन भी आज दुस्तर !

(३)

हाय ! वर्षाएँ हज़ारों द्वय दृगों से झर चुकी हैं,
हाय ! कितनी ग्रीष्म ऋतुएँ, आह बनकर उड़ चुकी हैं !

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्राण, अधरों पर रमा, शत, धूनियाँ बस थक चुके हैं,
हाँ, इसी जड़ लेखनी से, रक्त-झरने झर चुके हैं!
है नहीं अधिकार जीने, का तुझे रे कवि! अभागे,
स्वार्थ-युग में कर रहा, परमार्थ फिर क्यों प्राण त्यागे?
तू स्वयं हत क्रौंच पक्षी, तू स्वयं वाल्मीकि ऋषिवर!
स्वप्न-सा है हास्य रे कवि! पर रुदन पर भी आज दुस्तर!

(४)

सभ्यता के सप्त स्वर में, आज मानव प्राण रोते,
औ' कुबेरों के इशारों, पर, हज़ारों खून होते!
आज जग को कपि बनाकर, स्वर्ण-पुतली है नचाती!
आज मानवता-पिकी भी, कूक, करुण विहाग गाती
रट रहा जब "धन-तृषा" यह, विश्व-चातक तृषित पापी-
अश्रु को घन तब समझ तू, नाचता क्यों कवि-कलापी?
फिर कँटीली क़ैद में कवि! काव्य-कोकिल क्यों अनश्वर?
स्वप्न-सा है हास्य रे कवि! पर रुदन भी आज दुस्तर!

(५)

शब्द-गागर में भरेज़ा, तू हृदय का अश्रु-सागर,
अश्रु-दर्पण में झलकते, ब्रह्म, शिव औ' सत्य सुन्दर!
मूर्तियाँ आदर्श की शुचि, अश्रु-मन्दिर में रखी हैं
अश्रु ही तो सीढ़ियाँ, सर्वोच्चता के स्वर्ग की हैं!
कर्म के ये मर्म-पथ हैं, द्वार जग बन्धुत्व के हैं,
अश्रु ही तो काव्य-भाषा, बीज जग-अमरत्व के हैं।
हाँ, लिखेजा पूछते हैं, अमर तेरे अश्रु-अक्षर:—
स्वप्न-सा है हास्य क्यों कवि? क्यों रुदन भी आज दुस्तर?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

(६)

है चिरन्तन वेदना का, विकृत स्वर यह हास्य रे कवि!
और माया की भड़क, प्यासे हृदय की आग रे कवि!
"शक्ति, लक्ष्मी" के उपासक, ध्वंस होंगे शीघ्र ही कवि!
यह क्षणिक झञ्झा-झकोरा, हो रहा फिर क्यों विकल कवि?
तरनि, तारे, चन्द्र, पृथ्वी, आदि सब हों नष्ट रे कवि!
पर प्रलय भी स्वर अमर, तेरा, करेगा गान रे कवि!
जब रुदन ही गान शाश्वत्, फिर दिवाने भूम गाकरः—
"स्वप्न सा है हास्य रे जग! पर रुदन तो है अनश्वर"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जाग करुणे ! जाग री !

जाग करुणे ! जाग री !

विश्व-पनघटपर छलकती, रक्त-पूरित, आज हिंसा-गागरी !
अब सुनाने करुण-गाथा, चरण-कमलोंको तिहारे, मूक आँखें—
आ रहीं उड़कर लगाये, करुण रक्तिम अश्रु-भींगी, पलक-पाँखें !
दूर हिम-गिरि-पारसे उड़, आ रहीं सिसकी-भरी आहें हज़ारों !
खड्ग-खण्डित, रक्त-स्रवित, मानवोंकी चीखती साँसें हज़ारों !
आज लाखों छातियाँ हा ! ग्रीष्म-तापित पंक-सी, क्षण-क्षण दरकतीं !
पंखुड़ी-से मृदुल वक्षों, पर धरे कण्टक-चरण, हिंसा गरजती !
विश्व-वटकी शाख प्रति, संहारकारी तक्षकी फूत्कार करती !
मानवोंके दीप बुझते, जब गगनसे अग्नि-विष-फुङ्कार झरती !
देवि करुणे ! सो रही अब भी बता क्यों अश्रु-सीमा-पार-री ?
जाग, बह बन अंध-नयनोंमें अमर आँसू-तरी, अयि मात री !

जाग करुणे ! जाग री !

२

स्वार्थके लघु प्रात, बनकर सांध्यके श्मशान, भू-अम्बर जलाते
शक्ति के दौरात्म्य, नभकी नीलमी छाया-तले, होली जलाते
स्वर्णके पापी महल, अजगर-मुखी हो, तृण-कुटीरोंको निगलते
अश्रु-अम्बुधि-तल, सबल ये, मत्स्य मानव, निबल मीनोंको निगलते
समय-सागर-वक्षपर ये द्वीप-दानव आज बड़वा-से सुलगते
माँ प्रकृति की गोद में, भू-खण्ड लोभी बालकों-से हैं झगड़ते

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जल, स्व-भक्षी अग्निमें निर्बोध मानव, भग्न-उडु-सा गिर रहा है
भूमि-नभ-मण्डल सकल यह, वृत्त-कुण्डल काल-विषधरका बना है
उठ रही हैं त्रस्त बाहें, देख करुणे! अब क्षितिजके पार री!
जाग, मानव-बोधि-वटकी छाँहमें, बन, बुद्धका अवतार री!

जाग करुणे! जाग री!

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मेरी महा प्यास:-

कब बुझी ? कब बुझ सकेगी ? प्यास मेरी ! आग मेरी !!
दे रही क्षण-क्षण तृषा, निस्सीमता की अमर फेरी

छा गया हड़कम्पकारी,
प्राण में उन्माद-मण्डल
तप्त आहों से, प्रलय के
जल रहे तूफ़ान अविरल
प्राण के स्पन्दित पुलिन पर,
जल रहीं अगणित चिताएँ
प्राण के अन्तिम क्षितिज तक,
प्रतिध्वनित घायल सदाएँ
रात्रि की निस्तब्धता में,
जल रहीं रक्तिम शिराएँ
कर रहीं इस ओर से,
उस ओर तक 'सन्सन्' हवाएँ
वक्ष में विस्फोट, अधरों में,
पिपासा का निनर्तन
दृष्टि की इस मदिर गति में,
घोर एकाकी प्रकम्पन
ये फड़कती-सी भुजाएँ,
हो रहीं परिरम्भ-आकुल
विश्व भर को उर लगाने,
उठ रहीं होकर तृषाकुल

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आज मेरे लोचनों में,
छा गया विष किस नशे का ?
आज पुतली में लुढ़कता,
रिक्त प्याला नैश नभ का

कौन जीवन-सङ्गिनी मम ?,
जो कि पोंछे अश्रु मेरे
वह कहाँ सौंदर्य्य-नयनी ?
जो कि बोले, "प्राण मेरे!"

एक सूना-सा गगन बस,
एक सूना शुष्क सागर
एक सूनी भूमि है बस,
तप्त सूने चन्द्र, दिनकर

तत्त्व पाँचों मौनता पी,
कर रहे दिन-रात 'घरघर'
उड़ रहा मैं पतित पीले पात का,
बन करुण 'मरमर'

पँखुरियों से फूटते,
चिनगारियों के तप्त अम्बर
रक्त-फ़व्वारे रहे झर,
पुष्प-प्यालों में उफनकर

तरु-शिखाओं पर कड़कती,
तड़ित्, प्राणों की भयङ्कर
पल्लवों की अरुणिमा में,
लपलपाती ज्वाल हरहर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दिक्‌दिगन्तों में भड़क उट्ठी,
तृष्णा मंथित हृदय की
भग्न-लय फुफकारती है,
शून्य में, पागल हृदय की
एक टूटी आह मेरी,
कह रही है,-पी कहाँ रे !"
गिरि-गुहा में, भूमि-नभ में,
चीखती है,-पी कहाँ रे !"

इस क्षितिज से उस क्षितिज तक,
कह रही है,-पी कहाँ रे !"
अन्त में गिर, एक आँसू-सी,
रही कह,-पी कहाँ रे !"

चाहता हूँ, टूट बिखरूँ,
स्वर्ग-गङ्गा के पुलिन पर
तारकों की क्यारियों में,
उड़ चलूँ बन किरण खरतर
एक विद्युत्-ज्वाल बनकर,
नाप डालूँ नभ-तटों को
उस प्रिया की खोज में,
खोलूँ गगन के सब पटों को
शून्यता की सब तहों को,
छील डालूँ ! छील डालूँ !!
शून्यता की सीप से,
वह प्राण का मोती निकालूँ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नयन ऐसे ना मिले,
जिनमें ज्वलित आँखें बुझालूँ
और जिनमें तृषित लोचन,-
तारकों को मैं डुबालूँ

वे अधर भी मिल न पाये,
प्रेम की जो मौनता में—
हो प्रकम्पित, आर्त्त-विह्वल बन,
स्वयं की शून्यता में—

चूम मेरे अधर-किशलय;
एक धीमी आह भरकर----
आत्म-तर्पण की गुलाबी,
साँस में फिर मुखर होकर----

बोल दें, "प्रिय! तुम हमारे!,
हम तुम्हारे! तुम हमारे!!"
उस समर्पण की घड़ी में,
बन्द आँखें पलक मारे----

कह उठें, बेहोश पलकें,
कुछ उठा-"प्रिय!, तुम हमारे!!"
मौनता का वह हिमालय,
गा उठे,-"प्रिय! तुम हमारे!!"

एक पागल अश्रु का कण,
ऐक्यता की झलक दे दे
एक आलिङ्गन हृदय के,
लोचनों को पलक दे दे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यह महायौवन बना बढ़,
पूर्णिमा का चन्द्र-प्याला
पर भरा उसमें अमा का,
तृषित तम अति गहन काला
दे रही क्षण-क्षण तृषा,
निस्सीमता की जब कि फेरी
तब कहो, कैसे बुझेगी ?,
प्यास मेरी! आग मेरी !!

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

जब कि यौवन-कुसुम में मृदु, पँखुरियों की पाँख डोली
तब क्षितिज से अरुण ऊषा ने, उनींदी आँख खोली

गगन-प्याले ने उँड़ेली,
मेघ-मदिरा मेदिनी पर
भूमि-कन्या ने उड़ाया,
हरित अञ्चल लोल फरफर

जब कि मद-निर्मित दृगों में,
थीं उघरती बाल कलियाँ
जब कि पलकों की पुरी में,
नाचतीं मधु-मेघ-परियाँ

जब कि अधरों पर बरसते,
पँखुरियों के मृदुल चुम्बन
जब भुजाओं में बँधे थे,
कल कलश ले रूप, यौवन

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जब नशे में मस्त पग दो,
स्वप्न-पंखी बन गये थे
स्वप्न के आकाश में जब,
कुसुम-तारे उड़ रहे थे

चल रही थी, मलय-गिरि ले,
वायु ही जब, मंद, भारी
अर्चना का थाल कर पर,
ले चली मानों कुमारी

तब उड़ा मैं स्वर्ग-उपवन का,
भ्रमर बन तृषित चञ्चल
और फहरा सुप्त रति का,
बन सुरभिमय वक्ष-अञ्चल

दिख पड़ी सहसा अटारी पर चढ़ी,
वह स्वप्न--साक़ी
स्वप्न-धूमिल चाँदनी-सी,
विगत स्मृति की एक झाँकी

तैरते मृग-लोचनों में,
मुस्कुराई वह कुमारी
मीड़ की मद-मूर्च्छना-सा,
मैं बना उसका पुजारी

मैं तृषा-विह्वल, उठाकर,
रह गया कम्पित करों को
उड़ चला तत्क्षण लगाकर,
कल्पना-कोमल परों को

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मैं अभागा, उस परी की,
छाँह तक भी छू न पाया
बस निराशा-गर्त्त में,
उच्छ्वास बनकर जा समाया
बूँद मधु की एक मेरे,
अधर-पुट छू गिर पड़ी थी
एक थी वह बूंद, जिसमें,
प्यास सागर की भरी थी
एक चिनगारी, प्रलय की,
ज्वाल बनकर बढ़ चली थी
आह-सी वह प्यास मेरी,
बढ़ चली बस बढ़ चली थी
लालसा की आह ने बढ़,
शून्य अम्बर-पट कँपाया
नापकर सूने क्षितिज के,
दामनों को ला मिलाया
अन्त, टकराकर, हृदय के,
गहन तल को भी रुलाया
हंसनी मरणोन्मुखी बन,
आखिरी फिर गान गाया
प्रियतमा की खोज में सब,
तारकों के द्वार खोले
"पी कहाँ?" कह श्वास के,
अन्तिम थकित तूफ़ान बोले

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उड़ चले आँसू विकल,
वन ज्वाल-पंखी तप्त ओले
धूलि के कण क़दम छूकर,
उभर उट्ठे वन फफोले
जो डगर पकड़ी, लपट-सी,
वह बढ़ी वन भ्रांत माया
इस पथिक को ना मिली,
खग-पंख की भी रंक छाया
जब कि माखन-मृदुल नव,
छातियों को उर लगाया
आत्मा की ज्योति में,
प्रलयंकरी अवसान छाया
जो कली चूमी उसी में,
वासना का ख़ून पाया
ख़ून का पी घूँट, भभकी,
और भी यह मांस-काया
दृष्टि मेरी, डगर मेरी,
होगई तमसा-विलीना
छाँह में भी हा! स्वयं की,
सूख ना पाया पसीना
दूर वह सौंदर्य्य-अलका,
दूर वह मेरी सोहागिन
दूर है वह तृप्ति-मानस,
दूर मेरे पंथ अनगिन

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कब बुझी शाश्वत तृषा मम ?
खत्म होगी कब जवानी !
सुन ! सुकवि ! सुन ! मिल कहाँ,
पाई तुझे वह रूप-रानी ?
घूँट भर की चिर-तृषा वह !,
एक जलती वह निशानी
अश्रुओंकी साध-प्रतिमा !
लेखनी की वह रवानी !
आग दिल में तू जलाये,
आँख में भर क्षार पानी-
बस लिखेज !! बस लिखेजा !!,
कवि ! यही तेरी कहानी
दूर तेरी तृप्ति-तृष्णा,
पास है चिर-प्यास तेरी
कब बुझी ? कब बुझ सकेगी ?
प्यास मेरी ! आग मेरी !!

Sri Pratap Singh
Library
Srinagar.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

श्री मध्यभारत-हिन्दी-साहित्य-समिति इंदौर

की

विविध विषय-विभूषित सचित्र मासिक पत्रिका

' वीणा '

इस पत्रिका में धर्म, समाज, साहित्य, इतिहास, कृषि, गोरक्षा, वाणिज्य, स्वास्थ्य, शिक्षा आदि सर्वोपयोगी विषयों पर विद्वान लेखकों तथा लेखिकाओं के उपयोगी लेख, सुन्दर कविताएँ, मनोरंजक कहानियाँ तथा आवश्यक विषयों पर मार्मिक टिप्पणियाँ और चित्र भी रहते हैं।

ऐसी उपयोगी पत्रिका का वार्षिक मूल्य ४) एक अङ्क का ।=) आने है।

खास रिआयत

'वीणा' के ग्राहकों को मध्यभारत-हिन्दी-साहित्य-समिति से प्रकाशित होनेवाली सब पुस्तकें ३३) सैकड़े कमीशन काटकर अर्थात दो तिहाई मूल्य पर दी जावेंगी।

SPS
891.431 N 61 I
15745

निवेदक—

मैनेजर, 'वीणा'

वीणा-कार्यालय, तुकोगंज, इन्दौर

पं० दामोदरदास द्विवेदी द्वारा श्री मध्यभारत-हिन्दी-साहित्य-समिति प्रिंटिंग प्रेस, इन्दौर में मुद्रित।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE